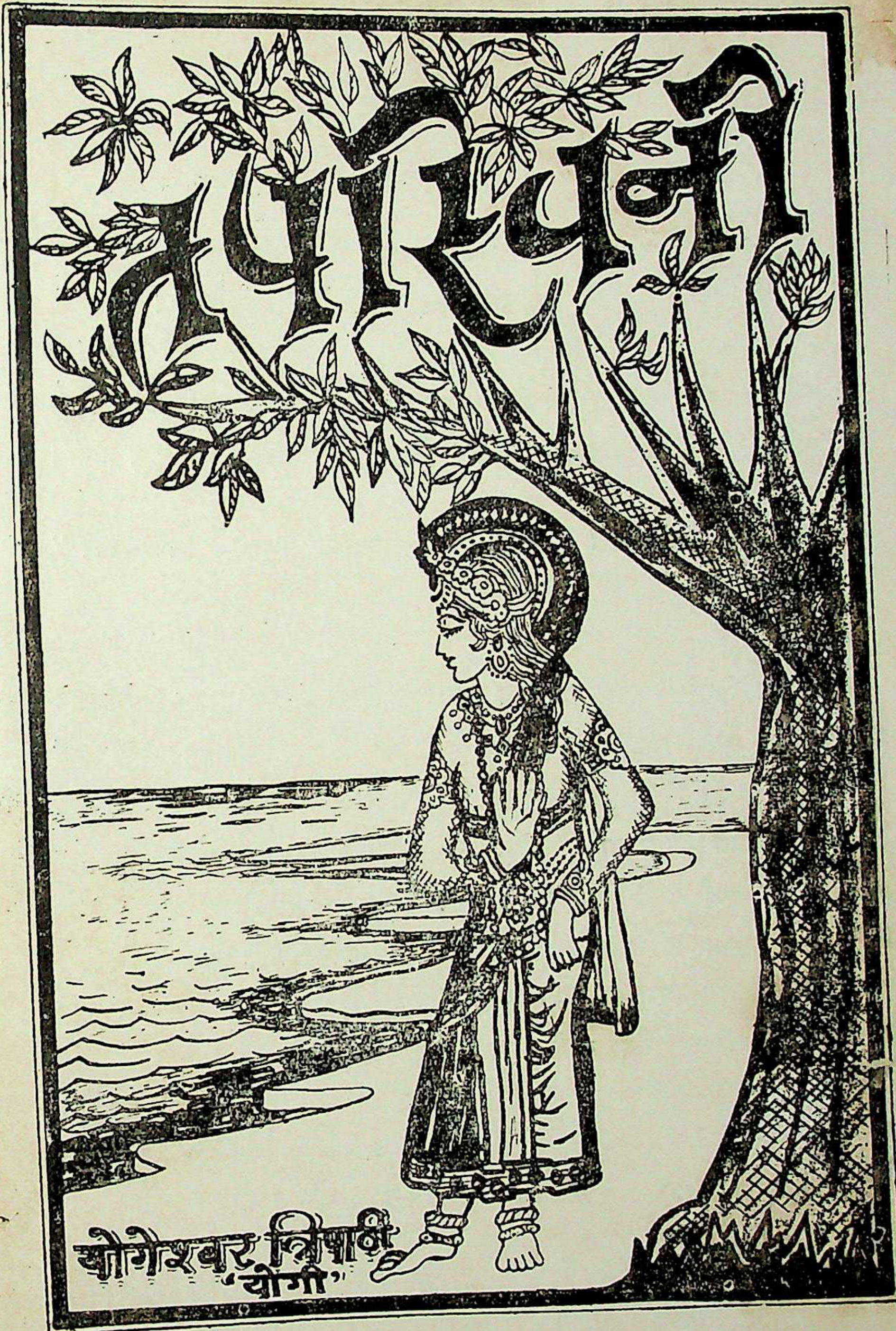
तपस्विनी
योगेश्वर त्रिपाठी
'योगी'

शुभकामनाएँ

हिन्दी पद्य-रचना की दृष्टि से अनुवाद सुपाठ्य और मनोरंजक है। जिस लगन से आपने यह कार्य किया है उसके लिए आपको बार बार बधाई! आशा है इस कृति का हिन्दी भाषियों में स्वागत होगा! इससे उड़िया हिन्दी के बीच सौमनस्य-सद्भावना भी फैलेगी। भारत की विभिन्न भाषाओं के बीच इस प्रकार के जितने भी सेतु बाँधे जा सकें उतनी ही भारत की एकता सुदृढ़ होगी!

—डा० हरिवंश राय "बच्चन"

"तपस्विनी" खण्ड काव्य का उड़िया से हिन्दी में काव्यानुवाद करके आपने हिन्दी की सच्ची सेवा की है। अनुवाद सुन्दर बन पड़ा है, इसके लिये मेरी बधाई स्वीकार करें। हिन्दी को आज ऐसे कर्मठ सेवियों की आवश्यकता है जो अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य हिन्दी में और हिन्दी का उत्तम साहित्य उन भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत करें। मै तो चाहूँगा कि इस प्रकार का साहित्यिक आदान प्रदान सभी भारतीय भाषाओं के मध्य अधिकाधिक परिमाण में हों। इससे भारतीय एकता को सच्चा बल मिलता है। मुझे विश्वास है कि आप इसी प्रकार हिन्दी की सेवा करते रहेंगे।

—कमलापति त्रिपाठी
रेलमंत्री भारत

मुनि आज्ञा सिर धारि
चल पडी सुकुमारि
कर कंजन सँवारि
सब कलश लिए।

सखी स्फटिक समाज
सीता कान्ति दिव्य साज
रही हीरक सी राज
शुचि प्रतिभा लिए ॥
प्रस्स्थित हुईं वे सब उपवन को,
बढ़ गई शोभा पाके उस धन को ॥ २५ ॥

वन लक्ष्मी उदार
देख सीता निज द्वार
उर उत्थित अपार
रवि की किरण में।

पल्लवाधर हसन
मुंजु मयूक दसन
हुई सादर मगन
चित्त के हरण में ॥
रंग शाल्मली ने अर्घ्य अर्पित किया,
दूर्वा दल बिन्दुओं ने पाद्य दे दिया ॥ २६ ॥

थल- कमल- आसन
देके प्रीति सम्भाषण
कर सारिका भाषण-
के बहाने मधु से।

सर- शरद- सुजल-
में खिला नव कमल
अलि स्वन में चपल
कल हंस वधू से ॥

बोली तेरे अरुण पदों में सजनी,
बीत गई मेरी सब खेद रजनी ॥ २७ ॥

तुझे मैंने भाग्य वश
नभ-सुमन सदृश
पाके असीम हरष
उल्लसित मन में।

चित्रकूट उपत्यका
सिद्ध सेवित दण्डका
पारावार पार लंका-
के अशोक वन में॥
आगे रख तुझे ही आदर्श-महिमा,
चौदह वर्ष गढ़ी प्रीति प्रतिमा ॥ २८ ॥

कर पुष्पक सनाथ
जब लौटी नभ पाथ
तब लेके पुष्प हाथ
मृग दृष्टि वरणी।
ऊर्ध्व देख सविषाद
तुझे केकी कलनाद-
ब्याज करती थी याद
अति दीर्घ सरणी॥
स्मरण सहचरी का कर मन में,
आज सखि आई तू अधिक दिन में ॥ २९ ॥

दीर्घ विरह अशेष
सखि दुस्सह विशेष
सोच तपस्विनो वेश
मैने धारण किया।
तेरे अन्तर आदर्श
मेरे बिम्बित विमर्श

तुझे सरस सहर्ष
कर वरण लिया ।।
धन्यवाद करलो ग्रहण हे सिये,
श्रद्धा से हमारी रुचि-पूर्ति के लिए ।। ३० ।।

मिलता जब सुसंग
स्वभाव चिर अभंग
रहे जैसे नील रंग
रहता गगन में ।
साधु-संग मन-अर्थ
कभी होता नहीं व्यर्थ
तभी मैं हुई समर्थ
तेरे दरशन में ।।
भाग्य में लिखा था यह लाभ मुझको,
हुई भाग्यवती सखि । पाके तुझको ।। ३१ ।।

सीता- हृदय- गहन
दाह- विरह- दहन
वन- श्री कृत शमन
सुमन हरण में ।
हुआ उदित नवल
मानो जलद पटल
उर अन्तर विमल
तभी उस क्षण में ।।
कहने लगी ये श्री जनक नन्दिनी
"आजीवन हुई तेरी कारा-बंन्दिनी" ।। ३२ ।।

-o--o--o-

(पंचम सर्ग)

राज–उद्यान–शोभा जलधि की लहर,
ले कुसुम-फेन का ढेर निज शीश पर।
जो चरण-फूल नख-रत्न से युक्त था,
ज्योति उपयुक्त सेवा समायुक्त था।।
है उसी का सुभग आगमन--
देख कर उल्लसित साधु उद्यान के।
चारु लतिका, विटप मृदु सुमन ।। १ ।।

एक तो यह बसन्ती मधुर काल है,
बाल रवि पर सुस्वर्णिम किरण जाल है।
हैं प्रसारित शिशिर विन्दु सब पर्ण में,
कर रहे हैं सुलीला विविध वर्ण में।।
ओस के बूँद ऊपर पड़े--
नील मोती भरे हीर माणिक, पटल
जा रहे थे विचित्रित गढ़े ।। २ ।।

सूर्य आभा मणी से सुमण्डित सदा
दश वदन दर्प दलते रहे सर्वदा।
गर्व की ज्योति दश-शीश की कर हरण
उस सती रत्न के ही सुपावन चरण,
आज वे ही चरण आ रहे--
मुनि वाटिका बीच, मणि गर्व की राशि
मानो हैं बिखरा रहे ॥ ३ ॥

है सती का हृदय श्याम श्रीराम मय,
सब विटप गण चुरा ले गये वह हृदय।
हो गये थे क्रमिक गाढ़ श्यामल वरण,
है सती के लिए एक पति की शरण।
अंग की कान्ति आभा मयी--
खिच कर कुसुम से कुसुम पर बढ़ी
अन्त में जा वहीं रह गयीं ॥ ४ ॥

केश की कान्ति ही भ्रमर ने ली मुदा
चम्पकों की बनी अंग छवि सम्पदा।
मंजु मन्दार ने ली अधर की रुची,
और सबको मिली जो जहाँ थी रुची ॥
सब हुए कान्तिमय निर्मली--
स्वर्ग कमला यथा आ गई मर्त्य में,
कर रही बाग लीला-स्थली ॥ ५ ॥

थी सती की सुगम छवि सुधा के सदृश,
अमृतोपम हुआ फूल में मधु सरस;
मंजुता और मृदुता उसी रूप में,
जा बसी पुष्प-कुल अंग अनुरूप में॥
बन सती पुण्य तप-राशिनी--
जोवन अकेला प्रभाहीन तन
हो गई थी विजन-वासिनी ॥ ६ ॥

साधवी के सुन्सत्कार उद्दाम में,
लग गई मकड़ियां, रात काम में।
चारु चन्द्रातपों की सजाने लगी,
हेम के पुष्प उनमें लगाने लगीं॥
पक्व नारंगियाँ राजतीं--
स्वर्ण-गोलक सदृश थीं वहाँ सैकडों
झूल झुक झूम कर साजतीं ॥ ७ ॥

मंजु रम्भा बहुत सी खड़ी साथ में,
पंक्ति पल्लव-पताका लिए हाथ में।
चरू मुचकुन्द मनहर निआली बकुल
कुन्द मृदु माधवी बल्लरी-कुल विपुल
फूल ले ताकते थे सभी--
रात रानी थी खड़ी पास में,
पुष्प सज्जित सुकेशी तभी ॥ ८ ॥

मंजु सखियाँ लिए संग प्रिय प्रान की,
पास उनके वहां आगई जानकी,
अनगिनत थे सुमन शुभ सती शीश पर
मृदु पवन से प्रफुल्लित रहे थे बिखर
चूमते शीश को थे कई--
दाबते हाथ थे कुछ मिलन में लगे
पाद वन्दन निरत थे कोई ॥ ९ ॥

पैर के रंग को चाटने को चढ़ीं
जीभ कितनी सुभग गुड़हलों की बढ़ीं ?
चूमने ज्योति-मोती सु-नख आस में,
खोल दाडिम बदन रह गया पास में
आश-कारुण्य - ऋण का वरण --
हो गया पीत चम्पा हरित वर्ण था
राम का रूप कर अनुसरण ॥ १० ॥

अत्र सर्वत्र थी चाँदनी अति मृदुल,
मनहरण कर रहे बाल तरु थे सकल।
चारदीवार पर सिर उठा झाँकते,
थे सती को तृषातुर नयन ताकते,
उठ सके शीश जिनके नहीं--
बाड़ के छेद से झाँकते रह गये
व्यग्र हो देखने को वहीं ॥ ११ ॥

फूलचुसनी सु-छाँची बिटप डाल पर,
बैठ निरखें सती को नयन डाल कर
कर रहीं जब कभी थी मधुर काकली,
मोद से बीच में पूँछ हिलती भली ॥
भर दिया जल सती ने तभी
बैठ कर आल-बालों निकट सोचतीं
नीर निर्भय पियेंगे सभी ॥ १२ ॥

एक मकड़ा अचानक चरण पर गिरा,
गिर उठा और तरु ओर को फिर फिरा।
वह फुदक कर चपल वृक्ष से वृक्ष पर
था दिखाता कुशलता चतुर कारगर ॥
भानु बनकर चितेरा यहाँ--
सूक्ष्म थे जो निकर-सूत्र के सोहते
रंग भरता विविध था वहाँ ॥ १३ ॥

सब विटप गण सहज भाव थे श्याम दल,
ज्योति मरकत लिए ठिठिरणी पक्षी दल।
ऊपरी डालियों पर विहरते हुए,
निज चपल चंचु घिस स्वच्छ करते हुए ॥
दिख रहे थे मनोहर वरण--
श्याम जलनिधि लहर में सुलुंठित भली,
दिव्य जैसे दिवाकर किरण ॥ १४ ॥

फूल चुसनो और छाँची - पक्षी विशेष

प्रेम आभा भरा राम का ही हृदय,
राज सिंहासनासीन बन हो अथय।
क्या वही आ गया दौड़ उद्यान में ?
साध्वी–यातना नाश के ध्यान में ?
ज्योति वह नेत्र सुफला सही––
जानकी के हृदय में सदृश स्वाति जल
प्रेम मुक्ता सृजन कर रही ॥ १५ ॥

बन कहीं पर लगा कटहलों का सघन,
था कहीं चूमता आम्र – कानन–गगन।
आम की छाँह में व्योम यों दिख रहा,
मंजु मानो सरोवर वहाँ भर रहा ॥
पुञ्ज तरु–स्कन्ध शत शत बढ़े––
लग रहा था कि होकर सभी एकमत,
जा रहे जंगलों को गढ़े ॥ १६ ॥

शाँन्ति–सर के मनुज–शून्य उपकूल पर,
आसरा ले चुके क्या तपस्वी–निकर ?
विघ्न गुरुभार ढोते हुए शीश पर,
रह गये थे अचल शान्त गम्भीरतर।
सत्य मानो इधर दृग किये––
जानकी पर पडे शीत आतपजनित
ताप को नाशने के लिए ॥ १७ ॥

ये प्रियंगु मढ़ा इंगुदी का विजन
क्या रहा है सजा सौम्य श्यामल सदन ?
बन गई आज श्यामा नवीना वधू
ढ़ालती है मधुर काकली का मधू ॥
श्यामता से पुरी थी रची –
पूजने को सती इन्द्र आदेश से
आ बुलाती यथा हो शची ॥ १८ ॥

नील चिकने सभी पत्र उज्ज्वल सुधर,
युक्त पुन्नाग-कानन अधिक श्यामतर,
छोड़ उत्कल यहाँ आ गये उड़ अभी
दे रहे मोद मन का सती को सभी ।।
क्या अचल नील का रूप धर—

प्राप्त करने यथा आ गये राम ही
मैथिली-प्रीति-सागर-लहर ।। १६ ।।

साथ लेकर सती संगिनी मंण्ड़ली
घूमने हेतु उद्यान आई चली,
आर्यावर्त्त उर में यथा सुरसरी,
आरही हो चली वृन्द ले सहचरी ।।
हो गया था अलंकृत सुपथ—

मुक्त उपहास कर युवति गंधर्व की
मंजु क्रीड़ा स्थली चैत्र रथ ।। २० ।।

सामूहिक कर वहन नीर तमसा विमल,
भर रही थी वहाँ पूर्ण थलहे सकल,
स्वर्ग की सुन्दरी बालिका सी मगन,
सुरसरी नीर से सींचती देव-बन ।।
या कि कादम्बिनी सिन्धु से—

नीर ले भर रही थी धरा का हृदय
ढ़ाल मानो सलिल विन्दु से ।। २१ ।।

वास अंचल कमर में लपेटे हुए,
चाल गतिपूर्ण चंचल समेटे हुए
शुष्क-केशी-शिरों पर कलश दुलरहे
स्वेद के विन्दु थे भाल पर ढलरहे ।।
हाथ से पोंछ लेती कभी—

धीर-गति-गामिनी राजकी नंदिनी
को परखतीं हुई फिर सभी ।। २२ ।।

पूज्य वृद्धनुकम्पा वहाँ उस समय,
आन बोली मधुर बोल वात्सल्मय,
नीर ढोना नहीं जानती जानकी,
कष्ट अनुभूति युक्ता मृदुलप्राण की ।।
"अब न कर तू अधिक श्रम" कहा—
एक ही बार बस देख उद्यान को
है प्रथम बार आई अहा ।। २३ ।।

आ अरी लाड़ली छाँव ठण्ड़ी इधर
छोड़ सब, बैठले, और कुछ भी न कर,
मै करा दूँ सु-परिचय उटज-रीति से,
बोल यह, ले गई फिर बड़ी प्रीति से ।।
तापसी संग सीता तभी—
छाँह में बैठ विश्राम करने लगीं
नीर ढोने लगीं सखि सभी ।। २४ ।।

तापसी ने कहा जानकी हो विदित,
कार्य करते सभी लोग श्रद्धा सहित,
फूल प्रति फूल होती प्रथक बास है,
भिन्न जीवन नए प्रेम का वास है ।।
प्रीति है भाव अनुयायिनी—
आसुरी ईश्वरी मानवी भेद से
ठीक होती सुफल-दायिनी ।। २५ ।।

दम्भ मद से तथा काम उत्कर्ष से,
देह बल रोष से आत्मापकर्ष से,
लोग करते तपस्या असुर भाव से.
है असम्भव तुम्हारे मृदुल भाव से ।।
देव द्विज गुरु बुधों को सदा—
शुचि सरल चित्त से प्रेम श्रद्धा सहित
पूजती तुम रहो सर्वदा ।। २६ ।।

शान्तिप्रद सत्य एवं सुभाषण अहा !
पूर्ण जीवन तुम्हारा सुभूषण रहा ।
पा सका छू न मन को तुम्हारे कपट
घुस सकेगी न माया तुम्हारे निकट ।।
सौम्य मूरति तुम्हारी शुची—
कह रही है विषय के गहन में नहीं
रह गयी हैं, तुम्हारी रुची ।। २७ ।।

लग रही तापसी तू प्रकृति से मुझे,
देखने मात्र से जान पाई मुझे ।
प्राण पावन तुम्हारे अधिक है मृदुल
घोर तप से मिला चारु दुष्प्राप्य फल ।।
पुण्य लतिका सुमन यह अभी—
आचरित नित नई तापसी का सुश्रम
है न अनुकूल उसके कभी ।। २८ ।।

संग सुकुमारियों के विचरती रहो,
और तुम्बी लिए नीर भरती रहो ।
साथ उत्साह दीपक बढाओ वहीं,
छोड़ तुमको सभी वे न जाएँ कहीं ।।
मैं उन्हें कह रही हूँ अभी—
रोक संकोच से कष्ट सहना नहीं
तुम पिपासा क्षुधा को कभी ।। २९ ।।

वालिकाएँ कभी रम्य आराम में,
कार्यरत हों, तभी बैठ आराम में ।
बस्तुएँ अभिलषित हों तुम्हारी जभी,
आन अविलम्ब देंगी कुमारी सभी ।।
तुम स्वयं घूम उद्यान में—
तोड़ लेना स्व-इच्छित सकल फूल फल
लेश शंका न रख ध्यान में ।। ३० ।।

सप्त घटिका दिवस था अभी छा गया,
बालिका दल लिए रिक्त घट, आ गया।
तापसी के निकट स्वेद युत देह से,
मंद गति आन बैठीं सभी नेह से॥
प्रस्फुटित हो धतूरा धवल—
पास में हो यथा राशि फल की वहाँ
संग हिमयुक्त मंजुल मुकुल ॥ ३१ ॥

सब वहां से उठीं और फिर स्नानकर,
वे गईं लौट निज वासस्थान पर।
मुनि जनों ने सुलभ जो किए मूल फल,
बैठ भोजन किये साथ मिलकर सकल॥
अध्ययन प्राध्यापन हुआ—
रीति अनुरूप इस भाँति मुनिबृन्द का
पुण्य मध्याह्न-यापन हुआ ॥ ३२ ॥

उन तपस्वी जनों के सुखद स्नेह से,
हट गया दुःख सती का हृदय-गेह से।
स्वर्ण-पथ में कभी राज्य सुख-सारभी,
पड़ सका भूल से ही न एक बार भी॥
मानसिक स्वच्छ सर में अरे!
रूप मनहर लिए राम कलहंस ही
अनवरत मंजु क्रीड़ा करे ॥ ३३ ॥

(षष्टम सर्ग)

उठ चित्रा में एक दिवस शशि गगन में
विकसित हुआ नवीन मालिका गहन में।
धीरे धीरे आश्रम की मल्ली-लता,
विकसित पुंज प्रसून मोद से संयुता ॥

वकुल माधवी जुही निआली गन्ध से,
चला पवन यो भार युक्त गतिमंद से।
तमसा तट से स्वच्छ चन्द्रमा की किरण,
आलिंगित स्वच्छन्द कररही संवरण ॥

सीता-उटज समीप भिन्न आकार की,
विटप छवि विधु किरणें विविध प्रकार की।
प्राची दिशि में धीरे हो कर अग्रसर,
बढा कलेवर कभी छिपातीं ह्रास कर

कुटिया से कुछ दूर ज्योत्सना रंग में,
बैठी थी जानकी सजनि के संग में।
दिखती थी विधुकिरण सती के पास ही,
छिटक रही हो यथा अंग से ही सही ॥

प्रश्रय ले खद्योत युगल एक पत्र पर,
चमक रहे थे निशिपति से भी मंजुतर।
देख सती बोली मन में तुम धन्य हो,
यद्यपि रे खद्योत! कीट कुल जन्य हो।।

जगती में हैं जीव अधिक तुम से बली,
पर क्या है तन कान्ति कहीं तुमसे भली।
बडा भाग्य पाया था तुमने ईश-वर,
लोक नेत्र द्युति तेरी इससे प्रीतिकर।।

चक्रवाक स्वर तभी कर्ण को खींचता,
बार बार सुन पड़ा करुण रस सींचता
सती-नयन-सरिता करुण जल से पली,
दृग कपोल के कूल सहारे बह चली।।

चंचल हो जानकी छिपा सखि ओर से,
श्रम सीकर मिस अश्रु पोंछ पट छोर से।
समझ सखी ने कहा सुशीले तू बता,
निशि आनेपर चक्रवाक क्यों बोलता?

नगरों में भी क्या यह पक्षी डोलते
मध्य रात्रि में कातर हो क्या बोलते?
यदि ये चिल्लाते।तो सब नागरिक जन,
सुनकर क्या सोचते सभी के धीर मन?

सती संभल न पाई सुन; जल नैन का,
कण्ठ स्वर ही वना बिरोधक बैन का।
उसे देख बोली सखि छोडो यह कथा,
क्षमाकरो चापल्य व्यर्थही दी व्यथा।।

बोली सीता सखि अपना परिचय सही,
नहीं दिया इसहेतु व्यथा मन हो रही।
किया भरोसा मेरा अन्तिम जीवन ही,
साथ तुम्हारे बीतेगा वस यहीं कहीं।।

अपनी बीती तुमसे यदि मैं नहीं कहूँ,
तो कैसे विश्वास-प्रीति तुमसे लहूँ।
कहने से कम हो मेरा दुःख भार भी,
समझ सको तुम यह कैसा संसार भी ?

राजनन्दिनी मैं सखी सम्पद दोल में,
पली राजनारी के मधुमय कोल में।
पिक मराल शुक सारी मंजु मयूर सुघर,
राजनगर था कोलाहल से मधुर मुखर।।

चक्रवाक बोलता कभी जब निशिघन में,
नहीं दुःख होता मेरे बालक मन में।
शैशव हुआ समाप्त आ गया जब यौवन,
देखा आए देश देश के राजा गन।

जटित रत्न से धनुष पिता ने एक सुघर,
रक्खा जो दे रहा दिखाई अति मनहर।
एक एक कर छूकर धनु सब राजागण,
एक बार ही देख लौटते निज आसन।।

रत्नक्रीट ढकते थे बढ़कर केश धवल,
कितने ही नरपति दिखलाते अपना बल।
नृप किशोर केशरी युवक कितने आते,
धनुष और प्रत्यञ्चा छू कर फिर जाते।।

निष्फल साहस दर्प युक्त गति चञ्चल को,
आती थी सखि! हँसी देख उनके बल को।
राज भवन में बैठी लेकर कौतुहल,
सखियों साथ देखती थो मैं दृश्य सकल।।

और अंत में क्षत्री-कुल आभरण-चूल,
वर वर्ण कर रहा गंजम मरकत कांतिमूल।
बिकट धनुष के तभी बढ़े वे शोभाकर,
राजपुत्र के रूप खड़े हों ज्यों दिनकर।।

उन्हें देख कर मन मेरा था द्रवित वहीं,
इस तपसी जीवन में वह अनुभूति नहीं।
राजाओं को देख किया उपहास था,
उसी चपलता का होता अब हास था।

ऐसा सुन्दर रूप मिलेगा दर्शन में,
सोचा था यह कभी न सखि अपने मन में।
मेरा निर्मल हृदय भक्ति कर प्रीति वरण
वन्दन कर सविनय उनके युग रंग-चरण।।

जो तोडेगा धनुष उसे मेरा अर्पण,
करने को ही किया जनक ने ऐसा प्रण।
मैंने सोचा उस दिन ही प्रण हुआ शेष,
लेकर तपस्विनी बनूं पिता का शुभादेश।।

कौन धनुष तोड़ेगा उसका क्या निश्चय,
इन्हीं वीर ने करडाला मेरा मन क्रय।
मन में हो जब एक, अन्य बन जाये पति,
मृत्यु और जीवन में हो भीषण दुर्गति।।

जिसका कर कमनीय पुष्प-धनु पात्र है,
उसका धनु धारण ही निन्दा मात्र है।
मेरे भाग्यवीर ने धनु लेकर दुर्धर,
तोड़ दिया अन्तरतम का संताप प्रखर।

हुआ उसी वर वीर साथ मेरा परिणय,
धन्य हुई पाकर उनका स्वर्गीय प्रणय।
वीर शिरोमणि तीन अनुज उनके सुन्दर,
ग्रहण कर रहे थे मेरी बहनों के कर।।

पितु पुर से पति-पुर जाने के पथ में-
अय दिव्य सराशन फिर पति हाथ में।
भार्गव कुल का प्रवर क्षत्रि-कुल केतु था,
उनका धनु अर्पण मेरा भय हेतु था।।

फिर पाएगे कान्त कान्तिमय कामिनी,
होगी मेरे अर्ध प्रणय की स्वामिनी।
प्रभु ने ले जब धनुष कान तक खींच दिया,
मृगुकुल-वीर-श्री ने उनको वरण किया॥

सोचे मन कुछ और मिले फल और ही,
दैव-विधान समझ में सखि आता नहीं।
शौर्य पताका दिव्य उडा करके गगन,
लौट रहे वर-वीर प्रफुल्लित मोद मन॥

सम्पति-वन था ससुर हमारे का निलय
आकर घुसते शुभ संवादों के मलय।
शोभा तरू मै खिले आज आनन्द-सुमन,
और-प्रभा के पल्लव हर लेते जन-मन॥

भ्राता नव-परिणीत चार थे वीर जय,
आभूषण रत्नों से होते दीप्ति मय।
उनसे अधिक सजे बधुओं के वेश थे,
महोल्लासित करते सब भवन प्रवेश थे॥

सखि! उस राज भवन में वृद्धा एक थी,
वाणी बरसा रही हर्ष अतिरेक थी।
विभ्राजित था जिन तारों से निखिल गगन,
आज सुसज्जित था उनसे राजेन्द्र-सदन॥

निज बहनों के मैंने देखे मुख मण्डल,
हुए नवीन प्रेम की लज्जा से पाटल।
प्रकट वहाँ से हुए अधिक श्रम कण नये,
रत्न ज्योति से ज्योतिर्मय थे हो गये॥

स्वेद विन्दु पूरित ललाट में विधु किरण,
देख-देख सखि! वह होता है स्मरण।
स्वर्ग सम्पदा की वातें फैली जन में,
श्रुति उनको सच मान लोभ देते मन में॥

स्वर्ग लोभ में नृपति छोड़ कर सिंहासन,
तप करता है वन में कर फलनूलाशन।

मैंने जो देखा सखि ! पूज्य श्वसुर घर में,
सोचा यह सब होगा नहीं अमर पुर में।
सास ससुर का स्नेह प्रीति पति का संम्प्रति,
हेय सभी यह हुआ भान सुर-पुर के प्रति।

हुए महोत्सव कितने नवल महान वहीं,
होते हैं भी जग में मुझको ज्ञान नहीं।
आलोकित रत्नों से सुखकर राजनिलय,
प्रीति रत्न पति से पा कटने लगा समय।

सुनने को तब वहाँ चक्रवाकों का स्वर,
मिलता नहीं रात दिन था मुझको अवसर।
बारह वर्ष व्यतीत हुए इस सुख धन में,
बारह दिन से लगे मुझे मेरे मन में॥

दिवस एक बोले स्वामी उल्लास में,
आज रात में रहें प्रिये ! अधिवास में।
तुम्हें बनाने को निज उर का आभरण,
कल मुझको कर रही राज लक्ष्मी वरण॥

बोली मैं हे नाथ ! दिव्य अनुराग तुम्हारा,
होगा नहीं विभाजित तो जो पूर्ण हमारा।
वह बोले यह तो स्वाभाविक बात है,
सती चरण में झुकता श्री का गात है॥

घन होकर सागर जल उठ आकाश में,
जन-हित कर लौटता सिंधु के पास में।

मंगल विधि से हुई निशा शेष थी,
शुभ वाद्यों की शोभा प्रात विशेष थी॥

कान्त गए सह सचिव पिता के पास में,
मुझसे बोले लौट दुःख अभास में॥

जीवन-संगिनी छोड़ तुम्हारे ढिग जीवन,
जाता हूँ मैं आज तात आज्ञा से वन।

प्रिय भैया होंगे मेरे युवराज भरत,
राज्य लक्ष्मी हुई उन्हीं की प्रणत निरत
न-रख मानिनी ! निज ज्येष्ठा अभिमान को,
रखना उसके राज-मान-सम्मान को ।।

देखा मैंने निज स्वामी का मुख मंडल,
दिखता था जो शान्त पूर्ववत् ही उज्ज्वल।
मन होता था बन जाने के लिए चपल,
किन्तु हमारे लिए हृदय हो रहा विकल ।।

लेती मान बात उनकी परिहास भी
उठा तभी सब ओर रूदन उच्छ्‌वास भी।
हाहाकार प्रकम्पित पुर उद्‌भूत था
यह क्या विस्मय दायक स्वप्न अभूत था ।।

कहा चकित हो नाथ ! आप यदि जाएँगे बन
राजपुरी में इस दासी का कौन प्रयोजन ?
युवराज्ञी होती अब बनूँ भिखारिणी
करूँ पाद-सेवा होकर वन-चारिणी ।।

मति गति मेरी श्री चरणों में है सदा
बिना तुम्हारे अनचाहो सुर सम्पदा।
अनुज तुम्हारे प्रिय होंगे युवराज तभी
हँस हँस कर वनगामी होंगे आप जभी ।।

युवराज्ञी होगी मेरी माण्डवी बहन
बनूँ न क्यों पदचारी आपकी पुण्यधन
तज कर यह सुख बच न सकेगी सीता
उसे चरण-सेवा बिन जग है रीता ।।

जो कुछ भी विषाद छाया था प्रभु के मन
दूर हो गया सुनकर मेरे युक्त बचन।

माता, भ्राता, पिता, बन्धु, परिजन-पुरजन,
छोड़ सभी ले मुझे साथ चल दिये विजन ॥

केवल लक्ष्मण हो, जो थे मेरे देवर,
हुए नाथ के साथ वास वन के सहचर।
विस्मृति-नद में गिरा राज सुख डूब गया,
किया भ्रमण गिरि-कानन ले आनन्द नया ॥

सखी-रूप पाकर वन में मुनि कन्यागण,
स्नेह सौख्य जल में उनके मैं हुई मगन।
अधिक दिनों तक पंचवटी-वन में रही,
पुलकित जीवन गोदावरी समीप वही।

प्रात पवन वन के पुष्पों का वास हरे,
मन्द मन्द आकर कुटीर में सुरभि भरे।
कर्ण-कुहर में देती ढाल मनोरम स्वर,
आकर रूप राज-मागध के पिकी सुघर ॥

मोर-मयूरी प्रातः नर्तन-रत आकर,
मंडित करते कुटिया का प्रांगण-प्रान्तर।
कौतूहल वश आ जाते थे मृग-शिशु-गण,
करने को मेरे कर से नीवार-ग्रहण।

गज-शिशु जननी-गोद छोड़कर आ जाते,
ले-ले कर से खाद्य खेल करके, खाते।
विविध कुसुम ले गूँथ मनोहर हार को,
कान्त-कण्ठ डालती प्रीति-उपहार को ॥

सुमनों से सजकर वेणी परिहास में,
कान्त कुसुम-वन फिरें मुझे ले पास में।
कहते सखि! तू मेरी प्रतिमा प्रीति की,
प्राण-सजनि सुख गरिमा स्वर्ग पुनीत की ॥

मैं कहती "प्राणेश" प्रेम अधिकार है,
अतुलनीय इससे सुर-पुर-सुख-क्षार है।

फूलों के स्तम्भ चन्द्रातप सांज सुमन,
कुसुम-कदम्ब एक दिन रच कर सिंहासन॥

कर प्रसून का छत्र सुमन की चामर,
निर्मित व्यजन विचित्र कुसुम का शोभाकर।
कर किरीट निर्माण केतकी के दल से,
जड़े सुमन अति रम्य रत्न थे निर्मल से॥

विनत कहा, "पूजूँगी करूणागार चरण"
सिंहासन वस एक बार कीजिए ग्रहण।

सम्प्रति बोले महामना मुझसे तभी,
राजोचित उपचार मुझे वर्जित सभी॥

फूलेश्वरी बनाउँ वन की आज तुझे,
हाथ पकड बल से सुमनों से साज मुझे।
उनकी टूटे शपथ मुझे आपत्ति थी,
मुझको सम्मुख देख उन्हे परितृप्ति थी॥

नेत्र निमीलित लज्जा से हो गये त्वरित,
पुष्पासन में बैठी मैं रह गई हर्वित।
बोले प्रिय सानन्द रसिक-वर केशरी,
डालो तुम करुणा कटाक्ष सुमनेश्वरी॥

हर्ष प्रफुल्लित मुखमण्डल उनका लखकर,
बोलपडी यह अविधि हुई "विवेक शेखर"
जो मैं प्रभुचरणों की अर्चा योग्य नहीं,
बन सकती क्या तुच्छ सेविका भोग्य कहीं॥

कहा प्रणयिनी प्रणयी की यह रीति है,
मानवृद्धि एक की अपर की प्रीति है।
स्वामी के मुख उनकी प्रेम कथा सुनकर,
धन्य भाग्य निज मान मुदित थी चुप होकर॥

क्रम से संध्या हुई सुधाकर उठे गगन,
वन विहार में कान्त मुझे ले हुए मगन।

करने को रंजन तव फिर मेरे मनका,
वर्णन करते थे सुख कर निवास वन का।
चक्रवाक ने तभी निकट रव घोर किया,
सहज प्राणधन ने मेरा मुख चूम लिया ।।

कौतुक में मैं पूछ उठी इसका कारण,
कहा उन्होंने वही आज आ रहा स्मरण।
बोले, प्रेयसि यह तो कान्ता विरहित है,
दुःखानल से व्याग्र हो रहा दहित है ।।

दिनभर रहता प्रियासंग सुख-सिक्त है,
उसके बिना मानता जीवन रिक्त है।
वन में तुमको यदि मैं निज सहचरी न पाता,
दुःख दग्ध मैं विजन-भ्रमण में तव हो जाता ।।

विपिन-वास के निज सुख को कहता सुखकर,
मेरा जीवन नीरस वे करते मिलकर।
हैं स्वभाव से प्रिया बिना प्रिय प्राण विकल,
व्याकुल जीवन के माने संसार विफल ।।

जीव डूबता हो जग के जलनिधि में जब,
वनिता की तरणी का प्रश्रय मिलता तब।
मुझको थी अनुभूति न कैसा विरह-दुःख,
उसको सुन हँस पड़ी लाज से विनत मुख ।।

बीतगया कुछ समय हाय। फिर दुख आया,
मेरे जीवन पर उसने अधिकार जमाया।
करे भुक्तभोगी यथार्थ दुख का अनुभव,
मेरे अश्रुपतन का कारण कोक-रव ।।

कहा तापसी ने सखि मैं समझी निश्चय,
तेरे प्रिय का हृदय प्रेम पीयूष निलय।
रोते होंगे कोक सदृश नर-केशरी,
बीते शीघ्र तुम्हारी विपदा-शर्वरी ।।

सोने का संसार हो गया क्षार यों,
घटना में यह घटा घोर कुविचार क्यों ?
जिसको राजा ने समझा था जीवन-धन,
उसे त्यागने को फिर कैसे माना मन ।।

विधिविचार धिक्कार
कहाँ पर क्या किया,
अमृत के ऊपर विष
ला ढरका दिया ।।

—०—

(सप्तम सर्ग)

सखि से दुःख का योग सती ने यों कहा,
दुर्विपाक मेरा केवल कारण रहा।
नहीं हमारे कर्मों के दोषी थे विधि,
और कान्त तो स्वाभाविक थे करुणानिधि ।।
हो सकता क्या प्रिय वियोग भी जीवन में ?
सोचा ऐसा न था किसी भी क्षण मन में ।।
सखी सहे इसलिए घोर बे दुःसह दुख,
देख सकूँगी अपने स्वामी का श्रीमुख ।।
हरे मुमूर्षा आशा आकर प्राणों में ।
आश्वासन का मंत्र फूँककर कानों में ।।

स्वयं आज उस आशा का हो गया मरण,
दग्ध हो रहे प्राण स्वतः कर उसे स्मरण।
सखि बोली, मैं समझ न पाई ऐसे,
किसकी थी वह आश मरी फिर कैसे ।।
तुम समान साध्वी कपिला दारुण व्यथा,
विधि की निन्दा न करे यह अद्भुत कथा ।।

बोली सती हमारी गाथा दुःख भरी,
सब जाओगी जान श्रवण कर सखि अरी ।।
घोर कष्ट को दिया निमंत्रण था कैसे ?
निधन हुआ मेरी आशाओं का जैसे ।।

पंचवटी दिन एक कुटी के पास में,
हेम-हरिण था खेल रहा उल्लास में ।।
चित्रित चिक्कण चारु सलोना अंग था,
झलक रहा या भानु-किरण का संग था ।।
बिन्दु विचित्रित हेम-अंग की कान्ति थी,
नेत्रों में लग रही रत्न उद्भ्रान्ति थी ।।
कहीं न देखा मैंने मृग उस जात का,
नगर राज-पुर अथवा विपिन उपत्यका ।।
सोचा था जब कभी नगर फिर पाऊँगी,
यह सुचारु मृग एक साथ ले जाऊँगी ।।
चकित करूँगी दिखा इसे मति पुरजन की,
वर्णन करके साथ-साथ शोभा वन की ।।

उसे पकड़ने को तृण लेकर दिखलाया,
चौंक-चौंक कर मृगवर पास नहीं आया ।।
लुभा रहा मन और नेत्र सुखदाता था,
बारम्बार विजन में ही घुस जाता था ।।
मेरे मन को व्यस्त देख उसमें अहा,
स्नेह मूर्ति स्वामी ने तब मुझसे कहा ।।
सुन्दर मृग को ले आऊँगा तूर्ण अभी,
कर दूंगा तेरा कौतूहल पूर्ण सभी ।।
त्वरित चाल से धनुष-वाण धारण करते,
कान्त चले वन प्रान्त उसे पीछा करते ।।
स्वामी सत्वर मृग के पीछे हो गये,
और दृष्टि सीमा से मेरी खो गये ।।

गूंज उठा रव वन में "रक्षा करो लषण",
उसको सुन विचलित हो गया हमारा मन ।।
मनके साथ वहाँ फिर जब दे दिये श्रवण,
पड़ा सुनाई फिर से "रक्षा करो लखन" ।।
वहीं उपस्थित जान वीर सौमित्र निकट,
मैं बोली देखो सुत आया है संकट ।।
लक्ष्मण बोले तुम अपना मन थिर करो,
नहीं राघवी भाषा है यह मत डरो ।।
वीर समझते हैं स्वभाव सखि ! वीर का,
देखा शान्त स्वभाव धीर गम्भीर का ।।
नारी हृदम सत्य ही होता अति दुर्बल,
सुनकर उनकी बात हुई अत्यन्त विकल ।।

विनती करके तब कठोर भाषण किया,
स्वामी के सन्निकट उन्हें भिर भेज दिया ।।
मेरा सुख सौभाग्य सम्पदा राशि सभी,
लक्ष्मण की गति-श्रोत मध्य डूबे तभी ।।
विपदा ही तब मानो विग्रह धारण कर,
योगी वेश द्वार आई भिक्षुक बनकर ।।
भिक्षा दान समय बल से धर मेरा कर,
बैठाया विमान में ले जाकर सत्वर ।।
विनय और तर्जन मैंने कितने किये,
उस दुर्जन ने तनिक कान तक नहीं दिये ।।
जान गई मैं वेश नहीं गुण-चिह्न है,
बाहर साधु वेश भीतर कुछ भिन्न है ।।

लोग मानते सब शुभदायी धर्म है,
धर्म नाम ही यम का, कैसा मर्म है ?
दक्षिण दिशि की ओर चलाया खल ने रथ,
घने घोष से कम्पित करता था नभ पथ ।।

क्रन्दन रव जितना ऊँचा बढ़ता जाता,
रथ घर्घर स्वर में विलीन होता जाता ।।
देखा वन में नीचे मोर मयूरी गण,
देख देख कर मुझको, करते करुण रुदन ।।
यूथ यूथ में मृग गण करके ऊर्ध्व नयन,
चकित दृष्टि से वे निहारते थे स्यंदन ।।
पथ अवरोधी नभग एक ने समर किया,
पामर ने उसको भी पक्ष विहीन किया ।।

होती है प्रतिकूल पवन की गति कहीं,
बिहंग रोक पाया उस दुर्मति को नहीं ।।
पथ की पर्वत श्रेणी मस्तक टेक कर,
रोक न पायी व्योम-यान-गति छेककर ।।
भू-मानव को सूचित करने के लिए,
रही हेरती नीचे दीन नयन किए ।।
रथ घर्घर में क्रन्दन ध्वनि हो रही विफल
समझ बूझ कर गिरा दिये भूषण सकल ।।
देखा नदियों को भी व्याकुलता सहतीं,
क्षोण-गात होकर जैसे निश्चल वहतीं ।।
तुंग विटप सब तन को संकोचित करके,
उसे देख भिड गए परस्पर वे डर के ।।

अवनी क्रम से थी नीरव हो गई तभी,
मृग विहंग डर से छिपते जा रहे सभी ।।
याम्य और पश्चिम प्राची मे ककुभ त्रय,
पडे दिखाई क्रम से गाढ़ नीलिमा मय ।।
पृथ्वी का कुछ लक्षण नहीं दृष्टि आता,
किन्तु दुष्ट का यान उधर को ही जाता ।।
क्षितिज दिखाई पड़ा सामने ही उज्ज्वल,
समझी मै सम्भवतः होगी विजन अनल ।।

जैसे ही रथ आता जाता पास था,
ज्योति पुंज छिटकाता दिव्य प्रकाश था ।।
सोचा मैंने गगन छोड तारा सकल,
दिन में ही आगये वहां सब दल के दल ।।

निशिपति के वियोग से तज कर नभ मंडल,
जला रहे हैं अपने उर में बिरह अनल ।।
मेरो मर्त्यलोक लीला थी आज शेष,
क्या इसी लिए था शमनपुरी में समावेश ।।
श्रेणी में अटारियाँ दिखती थीं मनहर,
हेम कलश दिखते थे कितने रम्य सुघर ।
दिखा नगर प्रासाद वीथियाँ राजती,
दिनकर किरणे ही मानो पुर साजती ।।
सौध शिरों पर कलश स्वकिरणों से उज्ज्वल,
फैला दिव्य प्रकाश कर रहे थे झलमल ।।
उसी समय मेरे मन में यह ज्ञान हुआ,
योगी निश्चय ही कृतान्त-चर भान हुआ ।।

राम समीप जाऊँगी मै दर्पित होकर,
कान्त-भक्ति की उज्वल उन्नत असि लेकर ।।
नगर प्रांत में योगी ने रोका रथ को,
और चला फिर देख एक उपवन पथ को ।।
चारु संगमरमर से शोभित थी सरणी,
कुसुम फलों से उपवन-शोभा मन-हरणी ।।
तरु अशोक के अधिक दिखरहे खड़े हुए
कुसुम पुंज के पुंज मंजुता मढे हुए ।।
था उज्ज्वल उद्यान-मध्य में एक हर्म्य,
जो विषय रत्नसे जटित दिखरहा अधिक रम्य ।।
बोला योगी मुझसे, तू अब रह यहीं,
और चित्त मै कान्त विरह सोचना नहीं ।।

तेरा कानन वास कष्ट अब हुआ शेष,
सुरपुर सुख भोगो अब मंडित कर यही देश ।।
तीन भुवन में भी जो सम्पति है दुर्लभ,
बस इच्छा करने से होगी तुझे सुलभ ।।
सुकुमारियां सहस्र स्नेह सद्भाव से,
चरण कमल की दासी होगी चाव से ।।
रत्न भूषिता सुन्दरियाँ वर वेश में,
उन्हें बुलाकर बोला दृढ आदेश में ।।
इसे समझ कर तुम मेरी हृदयेश्वरी,
सेवा करना सदा भक्ति भावना भरी ।।
इसके मन अनुकूल कार्य में रत रहना,
सुना सुना कर मेरी यश गाथा कहना ।।

मन रम जाए मेरी सम्पति में जैसे,
सब प्रकार के सदा यत्न करनां वैसे ।।
इतना कह करके योगी जब चला गया,
मेरे उर अन्तर में विस्मय समा गया ।।
वह योगी है कौन मुझे लाया क्योंकर,
कुछ भी जान न पाई यह है कौन नगर ।।
हृदयेश्वरी बन गई इसकी मै कैसे,
रघुकुल बधू-शरीर अभी भी है वैसे ।।
अब भी तो जीवित हू यह है मुझे स्मरण,
कौशल्या नन्दन ही मेरे प्राण-शरण ।।
फिर मैने कर लिया हृदय में दृढ निश्चय,
जो कोई भी हो योगी इनमें क्या भय ।।

जबतक जीवित रहू रहे बस यही स्मरण,
एक मात्र मुझको कौशल्या-सुअन शरण ।।
यम का आलय हो अथवा यह स्वर्ग हो,
चाहे विहरित यहाँ देवता वर्ग हो ।।

कर पाएगा कौन हमारा चित्त हरण,
एक मात्र मुझको कौशल्या-तनय शरण ।।
मुझे सहस्र दासियों से है कौन प्रयोजन,
क्या करना है और हमें अब मज्जन भोजन ।।
भ्रमण कर रहे होंगे बन में प्राणपति,
और रहेगी उनके चरणों में ही मति ।।
मंजुल वीणा लेकर यदि शत भारती,
पास हमारे यह संगीत उचारती ।।

मेरे कानों में उसका है मूल्य क्या ?
हो सकता प्रियतम-भाषा के तुल्य क्या ?
सोच सोच ऐसा श्रीपद में ध्यान लगा,
जीवन का भी मुझे भूलने ज्ञान लगा ।।
जाने कैसे कितना काल अतीत हुआ,
पति चिन्ता में सारा समय व्यतीत हुआ ।।
किन्तु रात दिन मुझे वहां लगते ऐसे,
अमर-वर्ष के ही समान हों वे जैसे ।।
देव भुवन ही उसे मानती थी मन में,
परिपूरित कर दैवी साहस जीवन में ।।
माँगा करती प्रभु से मुझको शक्ति दे,
दैवी-हृदयोचित ही पति की भक्ति दे ।।

रखती थी पति के चरणामृत-आशा को,
और नहीं गिनती थी क्षुधा-पिपासा को ।।
विविध भाँति के अंगराग बहु आभूषण,
खाद्य अनेक प्रकार आनकर दासी गण ।।
कहती थीं कितने ही मुझसे चाटु बचन,
विचलित किन्तु नहीं कर पाती मेरा मन ।।
दासी के वचनों से मैं जानी क्रम से,
रावण त्रिभुवन जयी स्वकीय पराक्रम से ।।

सुनकर उसका नाम डरा करते सुर-पति,
लंका जिसका धाम जिसे घेरे सरि-पति ।।
लाई गई हरण कर मैं उस देश में,
दुर्बिनीत के द्वारा योगी-वेश में ।।

नवल नगर उसका था अनुपम अमित रम्य,
जो मानव और किन्नरों से भी दुरधिगम्य ॥
मन में जो उठती सारी अभिलाषाएँ,
भय से सुर पूरी करते सब आशाएँ ।।
आ जाने पर तनिक अरुणिमा लोचन में,
विधि विपत्ति का भय करने लगते मन में ॥
रावण नाम सुना तब समझी आप से,
खण्डित गर्व हुआ जिसका शिव-चाप से ।।
सोचा कैसे साहस आया श्वान को,
करने के हित यज्ञ-सुधा के पान को ।।
और सत्य ही एक दिवस वह दुर्मति,
अनल तेज सा आन खड़ा मेरे सम्प्रति ।।

पापी मन से पाप वचन से पापी ने,
किया प्रलापारम्भ स्वगरिमा ज्ञापी ने ॥
मेरी दुख-घन-घटा पूर्ण दृग-वारि-धार,
देखकर हटा वह लिए गर्व का अंधकार ।।
मेरी उस घन-घटा बीच में चमक गई,
उसकी आशा भोमतड़ित की छटा नई ।।
सखी हुआ मुझको जिस दिन से ज्ञात था,
दानव ने छूलिया हमारा हाथ था ।।
स्पर्श स्थान से उठ शरीर में व्याप गई,
दुसह प्राण अस्थिर करती थी ज्वाल नई ।।
गरल बुझाए गये विषमतर विशिष पटल,
होते थे प्रतिभात गात के रोम सकल ।।

व्याध-वाण से आहत होकर हरिणी-गण,
कैसा दुख भोगते सोचता मेरा मन ।।
सहे कष्ट जो असहनीय थे मर्म में,
दृढ़ मति करते जाते थे वे धर्म में ।।
यही भरोसा दृढ़ता से रहता केवल,
अबला के हित सदा रहा है धर्मबल ।।
एकबार बनकर अजान असुराधम से,
हाथ बढ़ा भिक्षा देदी मैंने भ्रम से ।।
दिखलाएगा अब यदि वह बल का प्रकाश,
तो मारूँ या होऊँ उसके कर से विनाश ।।
यदि सत्य वस्तुतः है संसृति में विमल धर्म,
तो जगती देखे मेरा यह अद्भुत सुकर्म ।।

हो पाप तूल-पर्वत सा ही कितना विशाल,
पर दग्ध कर सके पुण्य-अग्नि का कण कराल ।।
हे सजनी ! देख, हो धर्म स्वयं ही सत्य-सार,
है ढाल रहा मेरे प्राणों में अमृत-धार ।।
दे गया कीश मुझको स्वामी का सुसंवाद,
कर गया किंतु रावण से वह जमकर विवाद,
फिर शीघ्र सुभग रघुकुल-मणि बानर-दल-बल में
करके निर्माण सेतु का सागर के जल में ।।
दुर्लंघ्य सिंधु को लाँघ आक्रमित कर लंका,
राक्षसपति के प्राणों में स्थापित कर शंका ।।
कर दिया यज्ञ रण का दुस्कर आरम्भ तभी,
थे काँप उठे लंका में सुन कपि-नाद सभी ।।

उद्भूत वीर जितने भी थे राक्षस-कुल से,
आकर बलि होते सभी यज्ञ में व्याकुल से ।
बस एक व्यक्ति ही करता था धर्माचरण,
जो रहा सदा ही रघुपति चरणों की शरण ।।

वह महायज्ञ में अटल यूप सा बन करके,
था अभय-पुष्प की माल कण्ठ धारण करके ।।
झर रहे हमारे नेत्र अश्रु के कण जितने,
वह रहा राक्षसी-रुधिर कोटि गुण में कितने ।।
रावण डूबा शोक सिंधु के त्रास में,
पड़ा नाथ के वाण-ग्राह के ग्रास में ।।
तदनन्तर श्री रघुपति मुझको देखकर,
स्नेह शून्य नयनों से लघु सा लेखकर ।।

जग में नहीं कुसंग कहाता पाप है,
मिले कुसंगी-संग घोर संताप है ।।
तू थी कामातुर दानव के भवन में,
पाप-भाव भी कभी उठे होंगे मन में ।।
कर सकता हूं नहीं तुझे मैं और ग्रहण,
स्वीकारूँ तो उठे तुरन्त लोक गर्हण ।।
जलद-वारि जब नीचे करता है गमन,
कैसे उसको और रोक सकता है घन ?
अनल शिखा की भाँति, अनलमें ही जलकर
वारि ऊर्ध्वगति पाता है घन में मिलकर ।।
सोच रही जीवन अबतक पा गया शरण,
सेवा कर पाऊँगी प्रभु के पद्मचरण ।।

पात्र न जो बन सकी नाथ-पद-सेवन की,
लाभ लालसा कौन करे फिर जीवन की ।।
दहन करूँगी देह देखकर मैं श्रीमुख,
है इससे फिर अधिक और क्या मुझको सुख ।।
देह दग्ध होने पर निश्चय प्राण ये,
जा कर प्रभु-श्री अंग पायंगे त्राण ये ।।
और धर्म के बल से यदि रह गई देह,
तो प्राप्त करूँगी अपने प्रभु का द्विगुण स्नेह ।।

बोली तब मैं अग्नि प्रज्ज्वलित की जाए,
उसमे ही प्रविष्ट यह दासी हो जाए ।।
अकुण्ठ आज्ञाकारी ने कुण्ठित चित से,
आग जलादी लक्ष्मण ने सत्वर गति से ।।

पवन वेग से अनल शिखा झूपने लगी,
चंचलता से बढ़ी गगन चूमने लगी ।।
लगा तृषित नयनों को प्रभु-मुख-कमल से,
जा पहुँची पावक समक्ष हार्दिक बल से ।।
बोल उठी मैं, रवि, शशि, पावक, वायु, गगन !
तुम सबसे है छिपा नहीं प्राणी का मन ।।
राघव के अतिरिक्त अन्य में मेरा चित,
प्रेमाकृष्ट हुआ हो यदि कण भी किंचित ।।
अनल, चतुर हैं आप सर्व भक्षण में,
करदें मुझको भस्म अभी इस क्षण में ।।
हुई वन्दिनी थी मैं राक्षस नगर में,
मुझे छला हो उसने पातक डगर में ।।

कोटि जन्म तक निज स्वामी के चरण कमल,
देख न पाऊँ, दहन करो मुझको अनल ।।
पुण्यवन्त पापी तेरे हित एक सभी,
लो स्वधर्म अनुसार सती के प्राण अभी ।।
धर्म जगत में यदि है सच्चा और अमर,
तो अपवाद हेतु तू मेरी रक्षा कर ।।
रहो स्वगुण से धर्म हमारे अग में,
अभय अनल में घुसो हमारे संग में ।।
यदि अशक्त जीवन में तो उपरान्त मरण,
कर देना सेविका मुझे प्रभु-चरण-शरण ।।
मेरा गात जलाकर क्षार बना लेना,
स्वाद-रूप में वृक्ष मूल में दे देना ।।

उसी काष्ठ को कारीगर हाथों देकर
प्रभु-पद की पादुका मुझे करना लेकर ॥
वारम्बार देख प्रभु मुख अनुराग में,
जा कर मैं निःशंक घुस गई आग में ॥
देख उसे कर उठे रुदन रघुमणि लक्ष्मण,
क्रन्दन करने लगे घोरतर सैनिक गण ॥
फिर असंख्य नयनों से वह करके अविरल,
लगा भिगोने मुझको वह कारुण्य-जल ॥
लगने लगा वहाँ पर था पावक शीतल,
हा ! हा ! रव से भरा समस्त गगन मण्डल ॥
मेरे ही अनुकूल गगन-बाणी हुई ॥
प्रभु द्वार सतीत्व गरिमा जानी गई ॥

शमित हुई थी अग्नि घर्म केवल से,
बचे हमारे प्राण धर्म के बल से ॥
दुःख राशि तब दग्ध हो गई मेरी,
बनी भाग्य से प्रभु चरणों की चेरी ॥
सोच रही थी कण्ठ मध्य रख जीव को,
प्राप्त कर सकी हूँ प्रभु-पद-राजीव को ॥
मुझे बिठा कर मंजु यान में नाथ तभी,
रिक्ष और बानर दल लेकर साथ सभी ॥
लौट रहे थे सभी अवध की ओर अरे,
नभ-पथ से हो सुखी विजय उल्लास भरे ॥
चिर वियोग-मरुदेश पार करके आये,
शुष्क प्राण ने पूर्ण प्रेम सागर पाये ॥

हुआ प्राण में था अपूर्व सुख का उदय,
और मान बैठी जग को आनन्दमय ॥
दुख रहता है यदि अपने ही जीवन में,
नहीं दिखाई देता फिर सुख त्रिभुवन में ॥

निज जीवन यदि स्वतः सुख सम्पूर्ण है,
तो सारा जग दिखता सुख परिपूर्ण है।।
जिस रथ से मैं पड़ी विपद के कूप में,
उस रथ से ही चढ़ी सम्पदा-स्तूप में।।
देख देख कर जिसे कभी मैं थी क्रन्दित,
देख उसी को आज हो रही आनन्दित।।
रत्न-दीप्त था यान और थी तीव्र गति,
ऊपर छाये मेघ, तले था सरितपति।।

सरित धराधर तथा धरणिरुह बहुतेरे,
हुए नयन के प्रीतिव्यूह में थे मेरे।।
पहले के आवास और वनस्थल सकल,
पुंज पुंज सुविहार कुंज सुन्दर अचल।।
धूम जटित ऋषियों के वे आश्रम अभय,
आकर्षित करने लगते मेरा हृदय।।
व्यस्त कुन्तला मुनि कुमारियाँ मंजु सभी,
रथ-निर्घोष दूर से ही सुन कर तभी।
चकित देखती थीं वे ऊर्ध्व वदन कर के,
पूर्व सुख-स्मृति मेरे मानस में भर के।।
उनका पावन प्रेम समुद आदर सुधर,
मृदुल मनोहर मंजु कथा से लसित अधर।।

सरल और ममतामय उनकी सुखद दृष्टि,
करती थी मेरे स्मरणपटल पर सुधा-वृष्टि।।
क्रम से ही मुनि तनुजाओं के नाम सभी,
हुए प्रस्फुटित निर्मल नीरज से तभी।।
घोर विरह की निशा तमिस्रा शेष में,
सुदिनों की ऊषा में सर-उपदेश में।।
उनके गत कालीन सुभाव-सुवास से,
प्राणों को मोदित करते उल्लास से।।

वन दर्शन से नहीं तृप्त मन हो पाया,
यान और द्रुत गति से आगे बढ़ आया ।।
नैसर्गिक शोभा के आलय रम्य वन,
नहीं रोकने में समर्थ था मेरा मन ।।

वह मन विचरण करता था नभ-स्यंदन में
घूम नगर में लगा सास-पद-वन्दन में ।।
सुन्दर श्यामल कान्ति कान्त के संग मे,
खेल रहे थे तीनों सुथल-सुरंग में ।।
मेरा मन हो गया अर्ध मण्डलाकार,
नीरद नवीन में शक्र चाप के ही प्रकार ।।
तनय प्राण प्रतिमा से वन वासी जभी,
हुए हमारे श्वसुर अयोध्या-पति तभी ।।
दुख से कर निर्बाण स्वजीवन दीप को,
चले गये वे सुरपुर शक्र समीप को ।
भरत, राज्य को राजहीन दुखमयपाकर,
स्वामी के ढ़िग कानन में पहुँचे जाकर ।।

हाथ जोड़ कर भरत वन गए दुख भाषी,
तब हम सब थे चित्रकूट केही वासो ।।
वीर पुरुष की विनती में थी विनय सही,
स्वामी से महीश बनने की वात कही ।।
पितृभक्ति को ही प्रगढ़तर कर वहीं,
राघब ने उसमें निज सम्मति दी नहीं ।।
बोले छोड़ा नहीं सत्य के ही पन को,
त्याग पिता ने दिया अन्त में निज तन को ।।
पूज्य पिता के पालित धर्म-बिहंग की,
तज विवेक सोचूं क्यों ग्रीवा भंग की ।।
पावन पद में गिर रोकर बोले भरत,
रखिए मुझको चरण-शरण सेवा में रत ।।

अर्वात छोड अस्ताचल जाते भानु जभी,
उसे छोड़ क्या किरणें रह पातीं कभी ?
प्रभु बोले, अवनी के सारे दुख निशि में,
खण्डन करने की क्षमता रहती शशि में ।।
कहा भरत ने सविनय श्री रघुराज से,
पाता है शशांक सब कुछ दिनराज से ।।
रत्न-पादुका ले निज भाल-प्रदेश पर,
उठा सकूँगा भार यथा महि शेष पर ।।
मस्तक पर शोभित होंगी पादुका मणी,
सदा समझता रहे शत्रुकुल मुझे फणी
प्रभु ने दी पादुका भरत के हाथ में,
वीर शिरोमणि ने रख ली निज माथ में ।।

लौट पड़े वे नीर लिए थे लोचन में,
लगे राजलक्ष्मी के दुख के मोचन में ।।
अवधि शेष पर बाट जोहता था खड़ा,
ठीक वहीं पर पुष्पक जा कर उतर पड़ा ।।
करके तब विमान से नीचे अवरोहण,
करने लगी सासुओं की पदधूलि ग्रहण ।।
सानुज प्रभु को देख जानकी संग में,
डूब रहा मन मुद-नद मंजु तरंग में ।।
चरण पादुका चरणों में अर्पित कर दी,
छत्र और चामर से प्रभु-पूजा कर दी ।।
स्वामी राजा बने और मैं महरानी,
प्रभु मानस अनुसार चरण सेवा ठानी ।।

मेरे मानस में जो जभी उदित होताथा,
सत्वर वह ही तभी सुसम्पादित होता था ।।
नृप दम्पति सनेह नौका में बैठ कर,
थे क्रीड़ारत सुख-सागर में पैठ कर ।।

सम्पद की तरंग में वहुधा नए नए,
कौतुक से अनेक वत्सर थे डूब गए ।।
कौन जानता था मेरे ललाट में ही,
लिखे विधाता ने असीम दुख आखर ही ।।
घोर विपद रूपी वाड़व उपजेगी,
भस्मसात् कर सभी ध्वंस नर देगी ।।
नभ सोभा दिवसाबसान की हो जैसी,
दशा गर्भ के मेरे भी कुछ थी वैसी ।।

गर्भवती की अभिलाषा पूरण तत्पर,
स्नेह भरे प्राणेश हो गये अधिकतर ।।
" वन विहार करती वन सखियों साथ अहा "
ऐसा मैंने एक दिवस प्रिय से कहा ।।
उसी रात ले पहले मुझको प्रात से,
लक्ष्मण पा आदेश चले निज भ्रात से ।।
मुझे आन सौमित्र जाह्नवी-तीर पर,
नौका से उतार कर बोले धीर धर ।।
कह यह वाणी सती कण्ठ में आ अड़ी,
आगे भीषण कष्ट देख कर रो पड़ी ।।
कहते हुए अजस्र नयन से धार बही,
मुनि कन्या ने उन्हें सम्हाला शीघ्र ही ।।

स्वयं रो पड़ी मुखसे मुख को जोड़ कर,
सुन सुन कर आगई तापसी दौड़ कर ।।
शीघ्र कुटी में दोनों को ही ले जाकर,
कहीं अनेक कथाएँ मन को बहला कर ।।
पादप जल-सिंचन से लेकर पुष्प चयन,
आदि सभी बातें कर करने लगीं शयन ।।

(अष्टम सर्ग)

जीवन में यौवन बढ़ता जैसे,
बढ़ बसन्त ग्रीषम आया वेसे।
युवा शक्ति जैसे होती प्रखरा,
आगई निदाघ हो प्रचण्डतरा ॥

तृष्णा सुख भोग की विषय भरी,
संचरित सुमृग-मरीचिका-परी।
सेमल तरु छोड़-तूल उड़ चली,
सूम सम्पदा यथा उखड़ चली ॥

पूर्व सा पलास में न रंग है,
यह अनित्य संसरण प्रसंग है।
मल्लिका सुताप तप्त फूटती,
अंग से सुवास अधिक छूटती ॥

साधु हृदय ताप से रहे अटल,
और बढे शान्तिपूर्ण यश प्रवल।
नयन निरख वनमल्ली के खिले,
साधु हृदय साधु से यथा मिले ॥

एकमत उभय हुए विचार म,
ग्रीष्म में सुवास के प्रचार में।
वर्षा से महि होगी जब शीतल,
पायेंगे शान्ति जीव जग सकल॥

हैं कदम्ब केतकी न वास कृपण,
लोक के हितार्थ करेंगे तर्पण।
अर्पण कर जन रंजन भर को,
छोड़ेंगे हँस तरु-संसार को॥

उन्नत शिर नलिनी निज गात से,
हर्ष से समर्थित उस बात में।
बोल पड़ी डूबूँ मैं संग में,
काल सिन्धु की तरंग तुंग में॥

मल्ली बोली यह होगा कहीं ?
कान्तभानु तुमको छोडे नहीं।
नलिनी बोली जब घन अ येगें,
मेरा मुख प्रिय न देख पायेंगे॥

विपदा में करके कुछ दिन यापन,
भवब्रत का कर दूँगी उद्यापन।
स्वामी घन को न भेद पायेंगे,
जग मंगल हित दुख अपनायेंगे॥

चिरदिन प्रियतम के अनुराग में,
लिप्त रहूँ लिखा नहीं भाग में।
उनके चरणों का करती सुमिरण,
मृत्यु मुझे कर लेगी स्वयं वरण।

इसी जन्म में कुछ दिन सह करके दुख,
पुर्नजन्म में देखूंगी प्रिय का मुख।
अपने श्रवणों से यह स्वयं जानकर
जीवन आदर्श उसे पूर्ण मान कर॥

बोलो सीता तू है साध्वी नलिनी
दिखती है तुझे पुण्य पूरित-सरणी।
हुँ विचार से ही मैं बहन तुम्हारी,
ऊपर से मैं हूँ फिर भाग्य की मारी ॥

तुझसा स्वामी सनेह भोगा बनमें,
स्वच्छ सुधा मय सुख आनन्द भवन में।
तेरे प्रिय दिवस नाथ प्रभा प्रकाशी,
उसी वंश जन्में नृप मेरे स्वामी ॥

कहती तू निज भविष्य की ही गति को,
मैं हूँ अपना चुकी उसी पद्धति को।
तेरा उर धन्य और धन्य तू सती,
जीवन में मुझको दे अपनी सन्मति ॥

जननिन्दा से पाकर दुःख बहुतेरा,
स्वामी ने त्याग किया था तबमेरा।
अपर जन्म देख कान्त छविहर्षिणी,
हूँगी क्या क्षम्य, बोल दिव्य दर्शिनी ॥

शीतल शतदल के दल-दल के तल में,
श्यामल धन वक्ष सु-सरसी के जल में।
काटा मध्याह्न कोक युग्म ने मिलकर,
राज हंस ने हंसी को ले सुखकर ॥

सरसिज-वन चिंगुड़ी मीन हंस से बचकर,
उछल उछल चल ने की गति को रच कर।
छत्र से विशाल पत्र-विपिन में घनी,
भूल गई अन्त में वक-पारणा बनी ॥

उठे हुए कमलों के पत्र के तल में,
चिटक चिटक, सफरी चल पड़ी जल में।
कुमुदिनी को बंक नाल में न बैठ कर,
घखो भी फुदक रही डुण्डुभ से डर ॥

डुण्डुभ पक्षी – विशेष

मलिन पिकी बैठ कर रसाल डाल पर,
काक-नीड के समीप पत्र डाल कर।
श्रुति सुधा न डाल प्यास से भरी हुई,
मानो छिपी चंडाल के भय से डरी हुई।।

जड़ में सुरंग लाल रंगी पूंछ हिल कर,
बुल बुल नहीं नचा रही फैला के डुला कर।
प्रतिपक्षी देख पूंछ हिला पंख तौल कर,
बोली नहीं वह कोप से निज चंचु खोल कर।।

उसको अहार मात्र ही आपस में जुझाता
भाई नहीं तो भाईका क्यों शत्रु कहाता।
बैठी थी उदर पूर्ण पनिकाय मोद में,
तरुवर विशाल शाल की डाली की गोद में।।

महुए के जंगलों में बैठे हैं शुक सकल,
भोजन के बहाने से काटते मधूक-फल।
अंकित होकर रहे मनो द्विज के स्वाभाव से,
वर्षा के लक्षणों को यंत्री में चाव से।।

तमसा के तीर लगे बट-तरु का तल
भरे निविड़ किसलय की छाया शीतल।
यहीं कुटज-बास-पूर्ण उटज में रह कर,
भजे सहज शांति-चरण ग्रीष्म प्रखर तर।।

बालिमकि खोल जहां ज्ञान के नयन,
देख रहें बैठ थे श्रीरामायन।
करते थे तापस दल कहीं अध्ययन,
कोई कहीं कर रहे थे वेद का गायन।।

गर्भ-भार गुरुतर से आलसी सीता,
तापसी सुवेश हुई दिव्यवेष्ठिता।
निविड कूंज में पल्लव-आसन उपगत,
दर्शन कर शान्ति स्वयं सेवा में रत।।

परिधि युक्त होकर मानो शशिमण्डल,
आया निशि विदा समय पश्चिम अंचल।
पीत गण्ड मण्डल में स्वेद का पटल,
शिशिर प्राय लगता हिम नयनों का जल॥

वन-वासिनि वीच बैठ राम की रानी,
सोच रही लंका की विगत कहानी।
स्मर्ण करे तापसी पवित्र भाव को,
मन्द नारकीय राक्षसी स्वभाव को॥

स्मृति में आये बीर वायु के नन्दन,
किया तभी पवन देव का अभिनन्दन।
सादर देवी ने ताल-वृन्त हिलाया,
शीतल समीर का प्रसाद भी पाया॥

सुन्दरी चिन्ता तभी कुछ आगे बढ़कर,
बोली वचनों में विनय स्वर भरकर।
देवि द्वार आये हैं कितने प्रियजन,
हो सतृष्ण करने को तेरा दर्शन॥

धन्य दूर देश से ये आये चलकर,
दर्शन की आश लिए ताप से जलकर।
रूप मनोहारी है लगता तन का,
प्रीति का आकार बना है उर उनका॥

देवी बोली सखि तुम लाओ सत्वर,
धन्य भाग्य मेरे जो इतना आदर।
उनके दर्शन पाकर ये दृग मेरे,
करलेंगे पापों का क्षय बहुतेरे॥

निदेश नुसार एक जन आकर,
बोला मृदु मंद देवी से हँसकर।
वन्धु सा अतीत काल से परिचित,
प्रेम पूर्ण वचन-सुधा से सिंचित॥

देवि पूर्व कथा स्मर्ण है उर में,
डाले थे पद पुनीत मेरे घर में।
अंगतेज से तेरे मेरा अवयव,
हुआ था कृतार्थ प्राप्त कर प्रभा-विभव ॥

उसी प्रभा छल से हैं मेरे निर्झर,
झरते हैं मोदयुक्त हो कर अर्जर।
हो प्रफुल्लता के आलय प्रसून गन,
हँस हँस निन्दित करते नन्दन कानन ॥

हो करके सरिता का नीर सुवासित,
करता तट वासी जन को उल्लासित।
तेरे पालित मयूर मद से माते,
ऊँचे स्वर में हैं नित गुणगण गाते ॥

तेरे दर्शन की वे आस ले अटल,
बार बार आते हैं मेघ के पटल।
धूम धूम खोज रहे प्रति दरी दरी,
जानकी कहाँ गई अनूप सुन्दरी ॥

पूछते गम्भीर मन्द राव से वहीं,
और 'नहीं' कहने से मानते नहीं।
शम्पा आलोक लिए खोजते वहीं,
निश्चय श्री सुन्दरी होगी यही कहीं ॥

देवि जान पाई भाग्य हीन जो विकट,
आया चिर दिन में यह आपके निकट।
तेरे पदरज से ही साज के मुकुट,
बना भाग्यवान वही मैं हुँ चित्रकूट ॥

आई तदुपरान्त एक नव रंगिनी,
स्वच्छ धवल कान्ति लिए मंजु अंगिनी।
आतप--संताप--तीव्र—दर्प—गंजनी, —
वन कुमारियों की चिरकाल संगिनी ॥

शोभित गिरि मालिका उर माल रूप से,
मन हरता भव्य भाल था मधूक से।
कर्णफूल में जम्बू नीलरत्न से.
शुक्ति रचित कमरबन्धजडे यत्न से॥

वन वासी मुनियों के चित्त मोहती,
चारु कुटिल वेणी नव नील सोहती।
कल कोमल भाषा से पुलकित था मुख.
मधुर भाव ज्ञापित कर सीता सम्मुख॥

बोली. हे देवि ले कृतज्ञता मेरी।
मैं हूँ चिरऋणी स्नेह ऋण से तेरी.
मैं चुका सकूं ! नहीं है मुझमें वह शक्ति,
तू उबार मुझ को लेकर मेरी भक्ति॥

महि में मेरे समान होंगे कितने,
पाये होंगे कृपा तुम्हारी कितने ?
तेरा शुभ दृष्टिपात पाई जबसे,
रेणु बनी स्वर्ण मयी मेरी तब से॥

क्रीड़ा रंजित करते तेरे युग नेत्र,
मेरे उर रच ड़ाला हीरक का क्षेत्र।
हों भले गिरीन्द्र-सुता श्री विष्णुपदी,
तुम्हीं से उपाधि प्राप्त मैं महानदी॥

आगई गोदावरी सम्मुख विशद काया,
मुख को मलीन कर रही विशाद की छाया,
व्याकुलता पूर्ण अश्रु करती मोचन,
अंचल से पौंछ पौंछ पद्म से लोचन॥

बहुत से विचित्र चित्र उज्ज्वल रंग में,
रंजित कर लाई थी अपने संग में।
सीता साध्वी को अनुमति पा सत्वर,
खोल के दिखाये उन्हें एक एक कर॥

बल्लरियों से कहीं कुसुमावली झड़ती,
दिनकर-किरण प्रचण्ड़ से गिरकर वहीं सड़ती।
पादप अनेक शुष्क पत्र दीन हीन-से
तेज से विहीन वेश में मलीन से,

कहीं किसी तरुवर की डाल हो विभंग,
रोक नहीं पाती थी पादप का अंग।
माँग रही तृण समूह से कहीं शरण,
किसका सिर चूम किसी के पकड़ चरण,

अण्डज पुरीष भरे पत्र थे सकल,
कर रहे शरीर किसी का कहीं धवल,
मकड़ी के जाल में कुछ मलिन वास से,
मुख ढाँपे दिख रहे विगतोल्लास से॥

वक-विक्रम देख देख दादुर के दल,
शीघ्र पलायन में वे हो रहे विफल।
कितने ही प्रस्तर के तल में खोकर,
उदर पूर्ति करते थे निश्छल होकर॥

वन्य महिष कहीं कहीं मिल दल के दल
करते वे पंकिल थे सरसी का जल।
जलज राशि कर्दम से हो करके लिप्त,
उनके पद तल में थे नीचे प्रक्षिप्त॥

अजगर कहीं अलस्त सा आहार ग्रास में,
था काष्ठ सा पड़ा हुआ पानी के पास में।
उनके समीप ताकते मृग यूथ वे सरणी,
छिप चाट रहा था वहीं शार्दूल अक्वणी॥

देखा फिर उग्र घोर दाव का दहन,
धूम्र तिमिर फैल पूर्ण कर रहा गहन।
थी असंख्य शाखा में शिषि-शिषा प्रचण्ड,
नभ से मिलने को उठकर प्रखण्ड खण्ड॥

जलते पाटल समूह उठ रहे गगन,
धूम्र परिवहन बिराज कर रहे गमन।
वैठ दूर बृक्ष पर सम्वाद वे कहते,
और फिर विशेष ताप मे उन्हें दहते।।

और कभी पत्र उर्ध्व पथ में मलीन,
उड़कर नभ मंडल में हो रहे विलीन।
पक्षी उड़ भाग रहे कितने नभ में,
कितने थे जूझ रहे अनल गर्भ में।।

गज महिव शृगाल तथा मृग दल के दल,
भालू वराह शशक वन्य पशु सकल।
धूम पटल मज्जित हो ताकते अनल,
किं कृतं विमूढ़ बने हो रहे विकल।।

भती भाव चकित चित्त सोर वानर,
भाग रहे डाल-डाल कूद कूद कर।
शावक ले पठी कहीं कोई कक्ष में;
धुँआधार दौड़ रहे सरित-लक्ष्य में।।

सरिता के श्रोत तथा सिकता के कूल,
भरते थे जीव जन्तु हो कर व्याकुल।
वोली गोदावरी कुछ देखा सुमने,
दण्डक का हाल जिसे छोड़ा तुमने।।

पर दुःख कातर सती करने लगी कथन,
क्रीड़ा का क्षेत्र हा! हा! दण्डक कानन।
सत्वर विधि करने से होती मैं धन्य,
शान्ति मुझे मिलती मम नेत्र-नीर-जन्य।।

नागरी अयोध्या वन के, सती को देख;
व्यस्त हुई पढ़ने में राज्यश्री का लेख।
शोक पूर्ण गद् गद् स्वर दुःख से विकृत,
लज्जा मय भाषा से ओष्ठ प्रकम्पित।।

"मैं निशि" सखी ! कौमुदी तू थी प्रभामई
कुमुद पुष्प मेरे दृग मूंद तू गई।
तेरे विन और नहीं मुझको सुख लेश,
घर के भूषा बिहीन नारी का वेश॥

राजभवन आज स्वयं हो गया गहन,
तेरा-ही विरह वहाँ दाव का दहन।
हो प्रविष्ट वह समग्र कर रहा विनाश,
और क्या वचा कहीं सुरम्यता विलास॥

पल्लवमय समुल्लास को जला रहा,
साधु हृदय अति विशाल वृक्ष से अहा।
हास से सुवासित जो सुमनों के वंश,
सहज वहां होते थे सारे बिध्वंश॥

शान्ति हरिण यूथ और धैर्य के गयंन्द,
कर विषाद-धूम्र मध्य प्राण को अमन्द।
सहन शीलता-सरि के उर में जा कर,
मग्न हुए ग्रीवा तक प्राण वचा कर॥

बलशाली श्वापद से दुष्ट के हृदय,
बचे नहीं निरापद वे भी निश्चय।
केवल श्रीराम हृदय सिन्धु सा अतल,
जिसमें निक्षिप्त पड़ा वह वड़वानल॥

राहु-ग्रसित गात यथा हो निशिषतिका,
तेरे बिन शेष मात्र वेश नृपति का।
भर गया अंधेरा मणियुक्त भवन में,
मेघ यथा तारा से पूर्ण गगन में॥

सास सभी बैठी थीं हृदय शोक सिक्त,
शुष्क सलिल शून्य यथा सरसी हो रिक्त।
फणिनी प्राणधन है मणि जैसे,
उससे भी अधिक तुझे मानें तैसे॥

बन्द हैं कपाट सब प्रमद उपवन में,
पड़ते है पुष्प नहीं किसी नयन में।
गन्ध-वणिक व्यथित हृदय उठे जा रहे,
च्युत प्रसून राशि कों वहीं सुखा रहे।

विटप वीथि वल्लियाँ भी हैं नहीं सुखी,
सोच सोच तुझको सब जातीं सूखी।
रम्य संगमरमर के पथ के ऊपर,
शुष्क पत्र गिर आसन करते उड़ कर।।

देवर निज प्रभु के आदेश को लिए,
हैं विषाद-पूर्ण विनत भाल वे किए।
मंत्र निहित-वीर्य यथा हो विषम भुजंग।
अथवा खर अंकुश से भीत हो मतंग।।

वहिनों के कल कपोल युत गण्डस्थल,
निर्भर थे प्रश्रय पा हस्त के कमल।
दिन दिन होता जाता उनका तन क्षीण,
असित पक्ष चन्द्र के समान कान्ति हीन।।

मुख मुरज न धारण कर राग रंगिनी,
मूक हो गई स्वयं संगीत संगिनी।
मलिन कुसुम के समान दासी तेरी,
जी रहीं सब ओर गाढ़ दुख की ढ़ेरी।।

कर सकी न पत्र पाठ पूर्ण परवसी,
बैठ गई दुखित ग्लान अवध-रूपसी।
सीता उसकी दशा निहार कृपा वश,
क्षोभ से संतप्त स्वयं हो गई विवश।।

हो आया अब तक था दिन का अवसान,
लौट पड़े अतिथि सभी निजनिज स्थान।
ले सती को, तापसी नवीन रंग में,
निरत हो गई सभी अपने प्रसंग में।।

—०—

(नवम सर्ग)

गर्भ भार सीता का अब उत्तर–उत्तर
गुरुतम तक आगया लाँघ करके गुरुतर।
बैठ गई तो उठना हो जाता दुस्कर.
उठने से तन हो जाता दुर्वह दुखकर ।।

कहीं सती को इससे हो जाए न कष्ट,
वर्षा ने आ कर दिया ताप को ही विनष्ट,
अवसन्न क्षुब्ध प्राणों को ही देने को बल,
उठ रहे चतुर्दिक् से थे श्याम जलद पटल ।।

ऊपर से कर अवरोध दिबस पति का आतप,
था तान दिया घनश्याम रंग का चन्द्रातप।
फिर उस वितान की प्रभा तड़ित से झलकगई,
नयनों की पलकों में जगमग कर छलकगई ।।

सब दिगंगनाएँ साज नील नवबेणी,
मंडित करती जाती बक मुक्ता श्रेणी।
कर रत्नाकर से रत्न रेणु का उत्तोलन.
थे दिग्पालों ने साज दिये मधुरिम तोरण ।।

स्वार्थ वशीकृत लज्जा का तज कर घेरा,
वासव बोले यही शरासन है मेरा ॥
वरुण नहीं सह सके कहा हो आतंकित,
रहे पास मेरे मम रत्नों से निर्मित ॥

अन्य दिगीशों ने स्वधर्म महिमा पाली.
समय समय पर दोनों की कर दीपाली ॥
सुता दुःख परिताप दग्ध अवनी के,
मस्तक पर वर्षा ने डाले छींटे ॥

वन पर्वत सर सरिता कुछ भो नहीं रही
जिनके सिर से नहीं बारि की धार बही ॥
तृण शस्यांकुर तथा कदम्बों का विकास.
हो रहा पुलक अवनी का ही ऐसे प्रकाश ॥

वसुन्धरा का वक्ष हो गया था जलमय,
तमसा थी बह चली दाब कर कूल उभय ॥
सीता को आसन्न प्रसविनी देख अहा,
उसके उर का मोद बाढ से उछल रहा ।

हृदय वह्नि को छोड़ सभी पर्वत कानन,
तन मज्जित कर हुए तृप्त पुलकित आनन ॥
कलित केतकी कंटक दुर्ग निवासिनी,
कंटक विग्रह से भी बनी सुहासिनो ॥

वैदेही को व्यथित देख विपदा बन में,
बोली देवि, नहों आकुल अपने मन में ॥
कंटक वन में स्वय शल्य से हूँ पीड़ित,
पर सुगन्ध के कारण ही जग में पूजित ॥

दिव्य तापसी उपवन में बन तपस्विनी,
लोकपूज्या हो जाएगी मनस्विनी ॥
और कर सकेगा क्या जग-लोचन-दूषण,
जब अपना गुण बनजाए दैवी भूषण ॥

आली ! कंटक देख न कोई करे प्रेम,
तो मैं क्यों छोड़ूं सुरभिगर्व का सहजनेम ।।
हुआ प्रस्फुटित चारु कृष्ण चूड़ा सुन्दर,
मन लोचन लोभित करता था रूप सुघर ।।

मधुऋतु से ही रजनी गन्धा वहाँ रही,
उसने वर्षा से सुमनों की बात कही ।।
कमला मल्ली तथा कुटज का रम्य विषय,
हुआ वहाँ पर वही प्रीतिदाता अतिशय ।।

रखे गये थे जो सयत्न नित रत्नमान,
पर कौन लांघ सकता है यह विधि का विधान ।।
रख न सकी वर्षा जिनको अपने बल से,
तिनों ही ग्रस गये काल के कवल से ।।

सीता को भी हो गया इसी से ज्ञात वहीं,
आजीवन साधू कभी उपेक्षित रहे नहीं ।।
वार्षिक उत्सव हेतु कुसुम मण्डन तभी,
अनुष्ठान में निरत जुही की लता सभी ।।

अहा सत्य क्या सती चित्त मोदित करने,
हेतु मग्न थी सुरभि-सौध निर्मित करने ।।
घन नीले अम्बर वाली श्रावण-रजनी,
गेह गुच्छ कर से सिर पर गन्धा रजनी ।।

हो कर सती खड़ी कुटीर के प्रांगण में,
रहे उजागर सदा वेदना वारण में ।।
बैदेही के प्रसव काल सब लक्षण,
होने लगे प्रकाशित थे आकर क्षण क्षण ।।

लिए कष्ट दादुर बैदेही का विकट,
चिल्लाते थे अति आर्त्त स्वर से निकट ।।
सती तृषा को चातक लेकर गगन में,
जल हितार्थ भिक्षाटन करता था घन में ।।

वृद्ध तापसी एक सतीं के सन्निधान में,
व्यस्त हुई उपयुक्त काल के ही विधान में।।
रजनी में ही लगे निशापति की द्युतिहर,
जनमे वैदेही ने थे शुभ यमज कुंवर।।

तेज कुमारों का मिलकर विद्युत सहित,
दशों दिशाओं को करता था आलोकित।।
हर्षित हो कर सुरेन्द्र ने की तोपध्वनि,
सब अजान बन बोल उठे है तीव्र अशनि।।

दिगंगनाओं की मंगल ध्वनि संग में,
घन-गर्जन मिल गया उसी के रंग में।।
गिरि कानन हो गये विमुक्त कुसुम वर्षी;
झूम झूम कर नीचे क्षेत्र सरित सरसी।।

दर्शन लोलुप सती-कुमारों के लिए,
खसित हो गये मेघधार का रूप लिए।।
हृकय दर्शनों का लोभी उद्वेग से,
नदी कूल ऊपर उठ आए वेग से।।

छोड छोड़ कर जलनिधि को सब मीन गण
सरिता के संध नाच नाच करतीं विचरण।
हृद में सर में और क्षेत्र के जल में भी,
उठ हर्षित मछलियाँ नृत्यरत हुई सभी।।

सबको पीछे छोड दर्शनाकुल विभोर,
केऊँ मछली चढ गई ताल-तरु-चूल छोर,
बाल्मीकि ऋषि तभी आ गये उसी समय,
लगे देखने प्रेम समेत कुमार उभय।।

सोच रहे गुरु शुक्र रुप मानो ग्रहद्वय,
एकत्रित हो आश्रय नभमें हुए उदय।।
लगता था महर्षि का उर जैसे प्रभात,
बह रही जहां आनन्द-कुसुम की सुरभि वात।।

मुनिवर ने निज हाथों में कुश ले लिए,
मंत्रित कर युग खण्ड वहीं पर कर दिए ।।
अनुकम्पा को गोद उन्हें करके अर्पण,
बोले करदो शिशुओं का इससे मार्जन ।।

अग्रभाग ले अग्रज तन धोकर सहला दो,
और अनुज को अधोभाग द्वारा नहला दो ।।
अनुकम्पा ने मुनि आज्ञा अनुसार तभी,
भूतनाशिनी रक्षा के कर योग सभी ।।

कुश-लव द्वारा किए गए सम्मार्जित तन,
शान धरे हों जैसे उज्वल चारु रतन ।।
दीपित हो जाती वह्नि यथा तृणराजि युक्त,
अथवा बालारुण लगता सागर-बीचि मुक्त ।।

जब निरख रही थी बैदेही शिशुओं के मुख,
आ गया हृदय में एक साथ सुख के संग दुख ।।
सुख बोल उठा ये सूर्य और शशि से मनहर,
जिसने भी धारण किए गर्भ मे यमज कुँवर ।।

वह धन्य धन्य हो गई अरे शतबार धन्य,
है परम भाग्यशीला जगमें इससे ना अन्य ।।
बोल पड़ा दुख तभी अरे ! ये कुँवर उभय,
शोभित करते यदि मणिमय राजेन्द्र निलय ।।

राज हृदय पुलकित आनन्दित हो जाता,
दुख दारिद दीनों का खण्डित हो जात ।।
कितना ही धन रत्न वस्त्र युत आभूषण,
पाकर होते धन्य आज पुर वासी जन ।

और नगर भर जाता मंगल नाद से,
नभ भर जाता मुदमय मंगल वाद्य से ।।
भाग्य दोष से वने अहा तापसी तनय,
ग्रहण किया आश्रय तापस-आलय मुदमय ।।

सती नेत्र से दो धारें जल की लेकर,
चला गया दुख शिशुओं का सनेह दे'कर ।।
युग नवजातों के रूपों में सती हृदय,
वहीं हो गया अति विशुद्ध स्नेहिल सुखमय ।।

लगे कुमारों को केवल देखने नयन,
छोड़ उन्हें अन्यत्र नहीं जाता था मन ।।
जननी के नेत्रों का उज्ज्वल स्नेह रंग,
रंजित करता था बार बार नवजात अंग ।।

उन नेत्रों में वह प्रतीति लाया ऐसे,
सत्य उदित हो हों रवि शशि जैसे ।।
मन में स्थापित किया मोदमय सिहासन,
स्वयं वहाँ हो गया प्रकाशित सार्वभौमपन ।।

नाभिच्छेदन युगल कुमारों का सत्वर,
अनुकम्पा ने किया पूर्ण हर्षित होकर ।।
अभिमंत्रित जल लेकर करवाये स्नान,
सम्पूर्ण किए इस भाँति सकल पावन विधान ।।

उन सुकुमारों को निरख रहा तपसी मंडल,
गद्-गद् आनन्दित हो करता था कोलाहल ।।
दल के दल आकर मुनिकुमार नर्तन करते,
हर्षातिरेक से राम नाम कीर्तन करते ।।

दुर्धर्ष और दुर्जय लवणासुर असुर क्रूर,
उसका मद मर्दन करने को शत्रुघ्न शूर ।
जाते उस पथ से उसी रात्रि दैवी क्रम में,
रुक गये वहीं थे वाल्मीकि के आश्रम में ।।

उस आश्रम के हर्षनाद के ही मद में,
डूब गये सम्पूर्ण स्वयं आनन्द नद में ।।
वैदेही की श्लाघा में वाणी पुलकी,
माता ! तू है परम पावनी रघुकुल की ।।

तेरी जननी भी सर्वसहा है वैसी,
हो तदनुरूप तुम भी निजमाता जैसी।
जो रत्न गर्भ में धारण कर रक्खा महान,
वस एक मात्र उससे ही हम सब भाग्यवान ।।

दे दिया रत्न जो रघुकुल को तुमने विराट,
उससे शोभित होगा कौशल श्री का ललाट ।।
मुनिसुकुमारों के मुदमय कोलाहल में,
साथ दे रहे थे खग मृग दल के दल में ।।

अति स्तीर्णा भीमा श्रावण की निशि भी,
शेष हो गई थी मुहूर्त की भाँति तभी।
लवण-विमर्दन हेतु सुमित्रा के नन्दन,
हुए अग्रसर यात्रा को कर मुनि वन्दन ।।

वन बासी जन को देने को धन-माया,
स्वाभाविक बैदेही के मन में आया।
सीता-मन अनुकूल कहाँ था धन सही,
क्योंकि स्वयं वह वन में आकर बस रही ।।

सोच रही चन्द्रिका करे संतुष्ट जगत,
किन्तु हो गये घन मंडल में घन उपगत।
बैदेही जब आई तज आनन्द-सदन,
सोचा था मन में जब छोड़ूगी कानन ।।

मुनिकुमारियों के निमित्त कुछ अलंकार,
लाई थी संग में अति सुन्दर वस्त्रोपहार।
हो कर विनम्र लज्जा से वह अर्पण करती,
तापस तापसियों का मन तोषित करती ।।

हृदय सिन्धु उनके मानो पाकर निशिकर,
आन्दोलित हो उठा पूर्ण आनन्द-लहर।
संचित थे नीवार और फल सन्निघान,
मृग और विहंगों को करतो थी सम्प्रदान ।।

अपनी अपनी ओर खींच कर मृग खाते,
दाव चोंच में कितने ही खग उड़ जाते।
नीड़ों में शावक बैठे मुख फैला कर,
जननी ने आहार दिया जिनको ला कर ॥

मोर मयूरी मिलकर हर्षित रव करते
पादप के ऊपर रच रच ताण्डब करते।
कर रही द्वीप द्वीपों में थी कोकिल प्रचार,
जा जा कर कहती फिरती थी शुभ समाचार ॥

देने को गिरि कैलाश सुखद यह सुसंवाद,
था राजहंस उड़ चला मचाता हर्षनाद।
गौरी को यह विश्वास दिलाने को मराल,
लेकर जाता था पत्र रूप में ही मृणाल ॥

शुभ समाचार से मनही मन पुलकित हो कर,
शिव की अनुमति ले तज करके कैलाश शिखर।
लेने को पूजा बैदेही के हाथ से,
रख गिरिजा षष्ठी रूप गगन के पाथ से ॥

कादम्बिनी संग छल से घन ज्योति विरल,
थी बालमीकि अश्रम में आ पहुँची चंचल।
सप्त मुनि-सुता के शरीर में रूप अदृश्,
आन विराजो स्वयं सप्तमत्रिका सदृश ॥

सती हाथ से छठे दिवस पूजा लेकर
मिटा कष्ट वर भुजा गई हरि बल-देकर।
क्रम से वीते सुखद एक विशात् वासर,
नाम करण का दिब्य आ गया शुभ अवसर ॥

बैदेही के युगल कुमारों के सुनाम,
सुनने को आये अमर त्याग कर स्वर्गधाम ॥
देख देवियों का मण्डल यह कौतूहल,
लगा दौडने उनके पीछे दल का दल ॥

शरदागन की शुभ वेला दौड़ रहे,
नीरद आतुर हो नभ में पथ छोड़ रहे।।
दिनकर किरणों सहित सहज ही उस पथ से,
सब के सब आ गये वहाँ ज्योतित रथ से।।

आश्रम में आ गए कुसुम दल के ऊपर,
धारण कर सौरभ स्वरूप लगते मनहर।।
दिखा दिव्य सौन्दर्य वहीं पर बैठ गए,
मुसकाते प्रस्फुटन व्याज से नए नए।।

कुछ उनमें पाकर तापस-तापसी-हृदय,
वहीं समाहित हुए प्रेम से हो मुदमय।
वाल्मीकि निर्देश प्राप्त कर तपसी जन,
चले गये उपवन में द्विगुणित प्रमुदित मन।।

नव पल्लव प्रसून लाकर सब संग संग,
निर्मत कर मण्डप साज रहे मंजुल सु-रंग।
जगमग आश्रम हुआ निशा में प्रथम प्रहर,
मनोहारिणी दीप मालिका उठी छहर।।

दीप प्रचुर इंगुदी तेल से पूर्ण किए,
जिन्हे जला कर तपसी हाथोंहाथ लिए।
पुष्पित तरु वल्लरी चतुर्दिक् थे मनहर,
हँस उठते थे पा करके आलोक-लहर।।

उसी समय में यह सुमनों का पर्व था,
बढ़ा रहा रजनी गंधा का गर्व था।।
लगता था सागर मंडल क्षीरार्णव,
देव गणों में शोभित हो जैसे वासव।।

हिमगिरि उच्च शृंग पर ज्यों गौरी शंकर,
मुनि समूह राजित ऋषि मण्डप-आसन पर।
सचमुच ही अश्विनीकुमार सदृश मुदमय,
कर कमलों में ले कर के सुकुमार उभय।।

मंडप में आगई सती अनुकम्पा भी,
हुई गर्व मे शोभा ही साकार तभी।
कृष्ण त्रयोदशी निशिकर के पास में,
प्रात तारिका उदित हुई आकाश में।।

ले उसका प्रतिविम्ब सरोवर गर्भ से,
मानों प्राची दिशा भरीं हो गर्व से।।
सरल हृदय की सभी प्रसन्न वदन वाली,
सती सहचरी कन्याएँ उपवन वाली।।

सतीदत्त उपकरणों से सब साज अंग,
सीता समीप ही बैठ गई सब संग संग।
ऊषा के द्वारा प्रदत्त पा नई किरण,
लगता जैसे उसके संग कमलिनी वन।।

वेद विहिन हो गया देवता का अर्चन,
भरा शंख शृंगी निनाद का घनगर्जन।
दे अग्रज कुमार को मंगल शुभाशीष,
हो कर प्रसन्न फिर बोल उठे मुनि कुलाधीश।।

मार्जित कुशाग्र से नाम इसी से होगा 'कुश,'
अनुरूष नाम के होगा रिपु-करीन्द्र-अंकुश।
फिर उसी भाँति छोटे कुमार के हुए काम,
मुनि मनीष पुंगव ने उसका 'लव' दिया नाम।।

मुनिगण मिल करते रामराम की ध्वनि अभंग,
खंजड़ी मजीरे साथ वजा करके मृदंग।
तापस कुमारियाँ वजा रहीं वीणा मनहर,
गा रहीं सुधा से पूर्ण मधुर संगीत सुघर।।

सौरभ स्वरूपिणी स्वर्ग देवियाँ तथा अमर,
नर्तन में रत फिर रहे वहाँ प्रमुदित होकर।
जुट कर चारों ओर हरिण हरिणी के गन,
ताक रहे उस ओर मुग्ध हो चकित नयन।।

आश्रम की चुलबुल में अति आनन्दमान
दे रहा प्रतिध्वनि के छल से बस योगदान।
संगोत निरत तरु लता बृन्द सब प्रमुदित से,
विद्याधर विद्याधरी बन गए गर्बित से।।

भरा पूर्ण उज्ज्वलता से आश्रम समुद,
किन्तु लगा तम पूर्ण सती का बदन कुमुद।
बचा रहा बस एक मात्र बिन राम चन्द्रमा,
एकमेब है अन्धकार का पर्द अमा।।

तम ने उसकी महिमा बढ़वाउ आकर,
तन के कारण हुआ चन्द्रिका का आदर।।
दिखते थे युग बालक रत्न सदृश् सुन्दर,
गिरि तल में ज्यों रत्नों की गंभीर कंदर।।

देव और ऋषियों ने सीता का गौरव,
बढ़ा दिया करके विधि से आनन्दोत्सव।
महत् जनों की ऐसी प्राकृतिक रीति,
सम्मान पात्र को देने में ही उन्हें प्रीति।।

और शेष में शिशुओं को सुख कामना,
साथ, आशिषें देते थे मुनि महामना।।
मुनिजन उर-सरसिज में ही करके आसन,
देव "तथास्तु" शब्द करते थे संम्भाषण।।

वन के तरु लता धीर घोष में तभी,
मिल "तथास्तु" मुदमय थे उच्चारते सभी।।
दश दिगपाल दिगन्तों में थे ड़ोलते,
और "तथास्तु" शब्द उच्चस्वर बोलते।।

—•—

(दशम सर्ग)

सती ने पाए थे दो रत्न,
प्राण से अधिक कर रही यत्न ।।
लगा लालन पालन में मन,
हो गया सदृढ़ स्नेह बन्धन ।।
छोड़ती साथ नहीं पल का,
भार जीवन का था हल्का ।।
स्नान की वेला जब आती,
छोड़ कर एक बार जाती ।।
वसन गीले ही ले तन पर,
दौड़ कर आ जाती सत्वर ।।
प्राण हो जाते थे चंचल,
देखने को सुत-वदन-कमल ।।
गर्व शशि का करके मर्दन,
हो रहे थे शिशु-तन वर्धन ।।
सुधाकर जैसे पूर्ण वदन,
बढ़ रहे नित सौन्दर्य सदन ।।

देख करके जननी का मुख,
गोद को हो जाते उन्मुख ।।
देख हँसते थे मातृवदन,
गोद हित करते थे क्रन्दन ।।
स्नेह से माँ गोद लेती,
झूला आनन्द—दोल देती ।।
निरख मुख बार बार लेते,
हँसा कर स्वयं विहँस देते ।।
सती को न था स्वप्न में भास,
दग्ध मुख से फूटेगा हास ।।
पूर्ण सुख का अपूर्व था हास,
स्वतः आ करके करे प्रकाश ।।
न उसमें पति ले पाए भाग,
नित्य निन्दा करती निज भाग ।।
कमल मुख मध्य रदन का छल,
रांजती गिरा परम उज्ज्वल ।।
खोल निज नैसर्गिक ज्योती,
निन्दय कुन्देदु धौत मोती ।।
आद्य वीणा बजती मृदु सी,
मधुर स्वर 'माँ' गुँजित मधु सी ।।
वही स्वर्गीय मलय की धुन,
पल्लवित करे मातृ-जीवन ।।
वर्ण पाटल प्रवाल सत्वर,
फूटता ओंठों अधरों पर ।।
वहीं से दन्त कुसुम कढ़ कर,
कौमुदी कान्ति उठी बढ कर ।।
भास्कर जैसा भास्वर मन,
प्राप्त कर प्राची इन्द्रासन ।।

अग्रसर हो कुवेर का कोष,
प्रभावित कर मुख देती तोष ।।
मानती जग को निजकर गत,
भाग्य सुख दोनों समुपागत ।।
अर्ध विकसित सरसिज सानी,
बोलते शिशु तुतली बानी ।।
भारती हाव चारु चितवन,
वेश मनहर लावण्य ठवन ।।
देख कर प्राण पुलक जमता,
नाचती उर पुर में ममता ।।
उभय शिशु फिर अवनीतल पर,
सरकते घुटनों करतल पर ।।
दूर से समुद बुलाती सती,
बढ़ाती वही शक्तिमय गती ।।
कुँवर कौतूहल पूर्ण सुहास,
वेग से आते जननी पास ।।
कभी कर में मिट्टी धरते,
जीभ अपनी पंकिल करते ।।
कभी देती माँ सुन्दर फल,
फेंकते हिला बदन मंडल ।।
चूर्ण कुंतल सुन्दर हिलते,
कंज से जैसे अलि मिलते ।।
खड़े हो गए मातृ-कर धर,
स्वयँ को कर पद पर निर्भर ।।
पकड़ कर करते थे संचरण,
उठा कर धीरे धीरे चरण ।।
जभी गिरते करते रोदन,
शान्त करती माँ चूम वदन ।।

बुलाले दोनों वन्य विहंग,
देखते कौतूहल से रंग ॥
मोर पंखो में दृग अड़ते,
पकड़ने उन्हें दौड़ पड़ते ॥
खेलते मृग-शावक लेकर,
कुसुम रचना तन को देकर ॥
तापसी तापस मुद मन में,
कुमारों संग फिरते बन में ॥
सजा सुमनावलि शीश कपोल,
झुलाते पुष्पित लतिका-दोल ॥
प्रस्फुटित शिशुओं में सुख कली,
और हठ करने की धुन चली ॥
कुमारों के तन उज्वल श्याम,
सुमन झूलों में दृग अभिराम ॥
लौंग वनलक्ष्मी की सुन्दर,
लाड़ से स्वर्ण विमंडित कर ॥
हिल तरु शाखा जिसके संग,
इतर शोभा हँस भ्रूभंग ॥
पंच सम्बत् हरि विक्रम से,
साज शिशु वित गए क्रम से ॥
कुँवर करते स्वच्छन्द भ्रमण,
सरित शाद्ष उद्यान विजन ॥
वन्यपशु की आपद् किंचित।
न गिनता उनका निर्भय चित ॥
यमज का चूड़ाकर्म सन्निधि।
सु-कृत वाल्मीकि ज्ञान-वारिधि ॥
सुदुंगम बीच ज्ञान-कानन।
आन छोड़े युग पंचानन ॥

संचरण करके वे सुकुमार।
करें अज्ञान-गजेन्द्र संहार ॥
रत्न रस काव्य शिखर अभिराम।
विराजित जहाँ केशरी राम ॥
और रावण-गज-रक्तिम धार।
झर रही जहाँ निर्झराकार॥
सिंहिनी कन्दर में रोती।
दंत-आघात दुखी होती॥
कुमारों को उस गिरिवर पर।
चढ़ा कौशल से ऋषि शेखर॥
खिलाते मृग शावक से मान।
खेलते वे शार्दूल समान॥
राम को ही मृगेन्द्र सा मान।
न जाने जनक सिंह-संतान॥
करें माँ के समीप गायन।
महाऋषि-निर्मित रामायन ॥
तान स्वर में लयबीनें बजा।
राम-भक्ति रस से मन भिजा॥
हिला देते थे लोचन शिर।
प्रेम लहरी में हो अस्थिर॥
तरज गर्जन रोदन शुभ हास।
हो रहे गाँते समय प्रकाश॥
वक्ष पुलकित हो बाहु युगल।
बेग से बहता लोचन--जल॥
प्राण में वाक्य भाव बनतड़ित।
हो रहे थे प्रगाढ़ से जड़ित॥
नव्य भारती बाल रस सनी।
निर्मला मंजुल मूरति बनी॥

विरच कर मधुर विचिभ हुलास।
कर रहे ये वितरित उल्लास।।
वही वन करके मेघाकार।
प्राण सिंचित करती रसधार।।
जानकी संग तापसी दल।
पान-रत गीतामृत निर्मल।।
हर्ष अवसाद शान्ति सन्ताप।
प्राप्त करती सुख दुःख अमाप।।
क्षोभ से हृदय हो गया द्रवित।
नयन से अश्रु हो रहे श्रवित।।
सती जो चरित-नायिका बनी।
राम के हृदव-हार की मनी।।
रही सुकुमार गर्भ धारिणी।
जन्हुजा-तीर विजन चारिणी।।
समझ पाये यह नहीं कुमार।
छिपाया था ऋषि ने सबसार।।
राम सीता गुण गौरव मान।
अति कौतूहल से करते गान।।
सुन सतीमणी होती लज्जित।
कर रहे सुख से मन मज्जित।।
आत्म गोपन सतर्क करती।
तापसी सदृश् समय हरती।।
रम्य रामायण करते श्रवण।
मुग्ध मृग वृन्द लगाकर श्रवण।।
नयन निश्चल लगते जड़वत।
भोग आहार तृषा विस्मृत।।
विहँग के बृन्द हुए नीरव।
हृदय में भरते श्रवण-विभव।।

वृक्ष पल्लव कुन्तल कवरी।
सुमन अबली जिसमें छहरी॥
गान में झूम उठे हो मस्त।
हिला अभिनीत वल्लरी-हस्त॥

मोह से गढ़ जाती तमसा।
मोद प्लावित हो कर विवसा॥
भूमि-उर में बहता अमृत।
कर रहा धन्यवाद में नृत्य॥

चतुर्दिग के वनवासी तभी।
मग्न थे सुधा-श्रोत में सभी॥
अनगिनत पूर्ण कर्ण कुहरी।
श्रोत से प्लावित अमर पुरी॥

इन्द्र ब्रहमा शिव सुन वह गान।
कर रहे धन्यवाद का दान॥
पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणी।
नाच उठती दिक् सामन्तिनी॥

धूल धूसरित गान का गर्व।
अप्सरा नाची ले गन्धर्व॥
लोक से लोकदेव ऋषि घूम।
गान करते सुकण्ठ से झूम॥

आदि कवि के सुकाव्य रस की।
प्रशंसा राम सीय-यश की॥
गीत उनके पियूष झरते।
कुँवर वीणा के स्वर भरते॥

कि जिनकी वीणा विश्वविदित।
बाल वीणा से हो प्रमुदित॥
प्रश्न पर कहते अति उत्तम।
धन्य हैं वे ही मुनि सत्तम॥

पर प्रशंसा मुद मय गाते।
तथा निज कीर्ति बढ़ा पाते॥
स्वगुण रहने पर भी पर गुण।
प्रशंसा में जो हुए निपुण॥
स्वगुण-तरु में जब फल फलते।
धर्नु गुण से ही शर चलते॥
पवन ढोकर प्रसून का वास।
जगत को देती अति उल्लास॥
कुमारों के एकादश वर्ष।
हुए पारित उपनयन सहर्ष॥
वहीं प्रारम्भ वेद अध्ययन।
प्राप्त कर लिए ज्ञान के नयन॥
सुज्ञन वेदज्ञ प्रभा छाई।
देख सीता दुख तज पाई॥
भानु तनया के जल में अरुण।
किरण से लगते नूतन तरुण॥
मनहरण छवि ले करके वरुण।
कोष से रश्मि रतन का ऋण॥
कुमारों के युग श्याम शरीर।
रचित अद्‌भुत कौशल से धीर॥
ज्ञान मार्जित भाषा उनकी।
पूत कारी उर कानन की॥
रहे व्यवहार सदा तद्‌रूप।
चरित में था अमरत्व अनूप॥
दीप्त मन वचन तथा सब अंग।
सजे जीवन में प्रभातरंग॥
जननि जीवन में सुख-आलोक।
भर रहा पुत्र पठित श्लोक॥

और अधिकाधिक मन हरणी।
हो रही शोक स्मृति रजनी।।
दुखी को समझाती सुख मूल्य।
चिर सुखी का सुख वहाँ अतुल्य।।
कुमारों के नव पुलकित रूप।
जननि नेत्रों में रत्न स्तूप।।
प्रशंसा सुत की माता-श्रवण।
बीच करती शत सुधा झरण।।
वहाँ स्वामी की यश-श्रेणी।
नसेनी सती स्वर्ग देनी।।
जहाँ सुत तज कर जननी अंक।
विचरने लगे बने निःशंक।।
तभी से सीता तप मय व्रत।
अनुष्ठित करने लगी सतत।।
प्रभु पदों में अर्पित कर मन।
लगी करने व्यतीत जीवन।।
ग्रीष्म सरिता के श्रोत-सदृश।
हो रहे प्राण सती के कृश।।
निशाकर कृष्णपक्ष का यथा।
लक्ष्य थी मृत्यु अमा निशि तथा।।
मान निज प्रभु को दिनकर सम।
आश करती स्वामी संगम।।
सोचती किसी भाँति भी कभी।
देख पाती पद पावन तभी।।
समर्पित कर अपने युग वीर।
छोड़ देती यह क्षणिक शरीर।।
प्राण का मृग जा कर सत्वर।
मुक्ति वन में करता निज घर।।

(एकादश सर्ग)

वसुन्धरा की प्रदक्षिणा से, क्षीण तेज वपु क्लान्त।
श्रमित अतीव व्यथित हो करके, एक दिवस दिन कान्त॥
प्रबल लालसा उर में लेकर, डूब गए दिनमान।
पश्चिम सागर नील सलिल में, करने की स्नान॥
हो कर दीन अधिक वियुक्त, निज प्रिय के बिन।
रह न सका पल मात्र, हो गया अनुगत दिन॥
दशा न जान सकी, पत्नी को पति हीना।
वास न पाई छोड़, पद्म—वाला दीना॥
क्षण में उसका लूट पाट कर, रंग वास का कोष।
बिखरा दिया गगन मंडल में, निशि ने सुभग प्रदोष॥
अवलोकन कर सुकुमारी, नलिनी का यह अपमान।
बिटप सिरीष निपट लज्जा से, पूर्ण हुआ म्रियमाण॥
सूर्य अस्त होने पर करके, अग्निहोत्र आराधन।
स्मरण कर रहे ईश-कृपा को, थे मुनि महा तपोधन॥
बैठ गए थे बिछा कुशासन, आश्रम के प्रांगण में।
सोच रहे थे राम सुशासन, विषय शान्ति से मन में॥

साथ साथ में सुकुमारों की, ज्ञान विज्ञता अतिशय।
फिर होगा किस भाँति पुत्र के, साथ पिता का परिचय।।

राजधर्म के साथ धनुर्विद्या, शिक्षा के द्वारे।
खड़े हो गए आकर के, सुकुमार युगल सुत प्यारे।।

तपस्वियों के संग संग, यदि वन में रह जाएँगे।
जीवन के अनमोल रत्न क्षण, यों ही ढह जाएँगे।।

राज पुत्र हो राजधर्म में, यदि ये निपुण नहीं होंगे।
निफल तरु की भाँति व्यर्थ ही, इनके सब सद्गुण होंगे।।

वीर पुत्र ही यदि न प्राप्त कर, सके वीरता का भूषण।
वीर वंश के लिए रहेगा, यह अत्यन्त दुसह दूषण।।

कौन कहे कब अवध, राज का सिंहासन
लगे खोजने राघव के, दायाद रतन।।

तब तो फिर उस समय राज का, मान तथा रक्षण क्षमता।
अनुपस्थिति में फूट उठेगी, नित्य नवीन नराधमता।।

रहा न यदि आदर्श वहाँ, फिर कैसे होगी पूर्ण कुशल।
यदि काननचारी बनकर, रह जाएँगे सुकुमार युगल।।

दानवीर होते विशेष, आये रघुवंश वीर।
वह आदर्श पूर्ण होगा कब, रह कर साधु कुटीर।।

राम रूप प्रतिबिम्ब सदृश, थे लगते अविकल।
अवयव सुदृढ़ धरे थे, वे सुकुमार युगल।।

निरख राम पहचान, सकेंगे निज नन्दन।
रिपु सूदन कर देंगे, सब भ्रम का खण्डन।।

सुकुमारों को ला देने पर, करें ग्रहण।
तो फिर मेरा नहीं रहेगा, कुछ गर्हण।।

किन्तु उन्होने एकमात्र, निन्दा डर से।
पतिव्रता जानते हुए, निष्ठुर उर से।।

दोहदिनी दयिता, को वन में भेज दिया।
दोहद पूरण का छल, उनके साथ किया।।

बारह वर्ष बीत जाने, पर सुत ममता।
उपज न पाई उनके, उर में सम्भवता ॥

प्रकृति करों में पुत्र प्रेम को अर्पण कर।
निश्चय उसकी सम्मति, अब लेंगे नर वर ॥

नही आस्था निज विश्वासों पर जिसकी।
हम हजार समझावें, माने क्यों किसकी ?

इसी विषय पर लक्ष्मण और वशिष्ठ सहित।
आवश्यक है परामर्श उपचार विहित ॥

इसी समय कर जोड़ राज का दूत प्रवर।
मुनि-कर में दे दिया पत्र प्रणमित हो कर ॥

पढ़ कर ऋषि हो गए परिस्थिति से अवगत।
आविष्कृत हो गया अरे यह वाँछित पथ ॥

महाराज कौशल नरेन्द्र का आमंत्रण।
अश्वमेघ का अनुष्ठान ही था कारण ॥

सोच रहे मुनिराज कि विधि अनुकूल हुआ।
भाव जलधि के पास दृष्टिगत कूल हुआ ॥

यज्ञ देखने मुनि-कुमार का वेश किए।
जाऊँगा निज शिष्य रूप में यमज लिए ॥

लव कुश यज्ञस्थल में जाकर स्थान स्थान।
करते घूमेंगे नव रामायण काव्य गान ॥

इस राम कथा से करके प्रीति-सुधा वर्षण।
निश्चय ही कर लेंगे वे जनमन आकर्षण ॥

दृष्टि पड़ेगी राम सदृश छवि लोचन में।
राघव--तनय--विषय सब सोचेंगे मन में ॥

विम्ब रूप में राम देख अपना स्वरुप।
निज हृदय डुबा देंगे हर्षित पा सुधा कूप ॥

सुकुमार ग्रहण में होंगे जब राघव कुंठित।
तो क्या कौशल्या होगी नहीं अवनि लुंठित ॥

रावण कर पाया नहीं जानकी को स्पर्श ।
रामायण में सुन सबको होगा प्राप्त हर्ष ।।
अनल परीक्षित हुई जानकी थी वन में ।
सुनकर किसको नहीं व्यथा होगी तन में ।।

रामायण जब खोलेगी यह सुभारती आलोक ।
तब निन्दा–तम छोड़ चला जाएगा तीनों लोक ।।

इसी भाँति थे सोच रहे मन में मुनिवर ।
भरे अतीव हर्ष से थे प्रफुल्ल अन्तर ।।

दे विश्राम निदेश दूत को वचन मधुर ।
लगा शिष्य मण्डली वार्ता हेतु सुधर ।।

× × × × ×

सीता के समीप जा पहुँचे हर्षित हो करके मुनिवर ।
लगे सुनाने अश्वमेघ मख की अति सुखदायिनी खबर ।।

कौशलेश का दूत अभी आया है लेकर आमंत्रण ।
शिष्य वृन्द के संग हमें कल करना होगा शीघ्र गमन ।।

शिष्य रूप में लव–कुश दोनों साथ हमारे जाएंगे ।
अगणित मुनिजन के दर्शन आशिष मनोरम पाएँगे ।।

वैदेही ने किए समर्थन मुनिवर के प्रस्ताव सभी ।
भार कुमारों का प्रगाढ़तर सौंप दिया सब भाँति तभी ।।

× × × × ×

बोल उठे तब शिष्य मंडली से ऋषिवर ।
अश्वमेघ देखने चलें निशि जाने पर ।।
साथ साथ लव–कुश के सहपाठी सकल ।
सज लेना सब भली भाँति पाथेय विमल ।।
बेटा लव–कुश तुम वीणा धारण करके ।
शिक्षा सफल बनाना गीत सुना करके ।।

जौन राम रामायण कविता के नायक ।
बने तुम्हारे अन्तर के भी मुद दायक ।।

वही राम कर रहे आज यह महा याग।
आयेंगे देश विदेशों से बहु महाभाग।।

पहुँचेंगे वहाँ विभीषण लंका अलंकार।
असुरों के दल के दल समेत कर सिंधु पार।।

अंगदादि सब प्रमुख भालु सुन्दर कपिगन।
आयेंगे सुग्रीव सहित हर्षित आनन।।

जो सदा मानते रहे लोष्ठ सम सानुमान।
बिक्रम शाली वर वीर अपरिमित हनूमान।।

मुदित हृदय से लेकर सीता—दत्त हार।
पंचानन सदृश वहाँ करते होंगे विहार।।

विविधि पंख की माल साज कर निज तन पर।
आए होंगे गुह समेत अनगिनत शवर।।

दुर्लभ राज्यश्री स्नेह का आलिंगन;
भ्रातृभक्ति बल से जिसका कर उल्लंघन।।

अग्रज की पादुका बिठा सिंहासन पर।
चौदह वर्ष बिताए फल मूलाशन पर।।

जीवन उन्नत किया बाँध कर जटा जूट।
हो ऊर्ध्व मुखी देखता जिसे हिम अचल कूट।।

वही भरत होंगे श्री राम अनुसरण में।
कीर्ति कौमुदी धरे चन्द्र से गगन में।।

निरख सकोगे क्षण जन्मा सौमित्र वहीं।
जिसके सदृश धरा पर कोई वीर नहीं।।

जिसके भय से सदा वज्रधर विचलित था।
उसका मद भी जिससे पद से रौंदित था।।

मेघनाद वध वार्ता होकर काल अनल।
रावण उर में घुसी, जल उठी ज्वला प्रबल।।

फिर संग संग बल की आहुति करके प्रदान।
हो गया उग्रतर अधिकाधिक राक्षस प्रधान।।

करके प्रदीप्त वह शक्ति ताप उत्तप्त घोर।
क्रोधित होकर निक्षेपित की सौमित्र ओर।।

शक्तिपात से आहत तीव्रव्यथा लक्ष्मण।
वक्ष पृष्ठ क्षत पूर्ण सार्थनामा लक्ष्मण।।

देखा अक्षर में उसे चक्षु से लख प्रत्यक्ष।
गा करके मंजु कथा सबकी सबके समक्ष।।

संगीत सुनेंगे मिलकर के शत शत नृप गण।
तप प्रभापूर्ण तन धारण कर शत शत मुनिजन।।

कोई पूछे वहाँ तुम्हरा यदि परिचय।
कह देना "वाल्मीकि शिष्य हम बन्धु उभय"।।

आज्ञा पाकर महाराज राम की उसे मान।
करना उनके सन्मुख रामायण मंजु गान।।

परिचय पूछेंगे जब भर कर के कौतूहल।
कह देना "वाल्मीकि-शिष्य हम बन्धु युगल।।

धन देने पर लोभ त्याग करके कहना।
धन लेकर क्या करें तपोवन में रहना।।

मुनि मुख से सुन अश्वमेध की सकल कथा।
वैदेही उर में आकस्मिक हुई व्यथा।।

लगी सोचने निश्चित रघुकुल चूड़ामणि।
आन अंक बैठाई होगी अन्य रमणि।।

भाग्यवती वह धन्य फल गया तप-पादप।
सगर वंश हित सिन्धु सदृश फलशीतातप।।

कौन, तपस्या घोर कहाँ की बहुतेरी।
जिसे जानने को इच्छा होती मेरी।।

कोई कह देगा यदि उस तप का नियम।
करूँ तपस्या निश्चय ही उससे गुरुतम।।

ज्ञात किसे है ? पूर्ण तपस्या का विवरण ।
होंगे बिज्ञ अवश्य वशिष्ठ आदि ऋषिगण ।।

यदि नहीं और कैसे वन राज्ञी मनोनीत ।
उसके मत से रघुनन्दन होंगे सुपरिणीत ।।

लाऊँ प्रयत्न से गूढ़ मंत्र हो प्राप्त यत्र ।
यह सोच सती बैठी लिखने की बिनय-पत्र ।।

"शरणागत-वत्सलध्वज रिपु गज के अंकुश ।
दुःख-शैल हित वज्र सदृश देखते विदुष ।।

महाराज राजेश्वर के युग कमल चरण ।
दीनभिक्षुणी विनत दूर से करे नमन ।।

करने को निज मधुर आश-तम का भेदन ।
कातर कानन से ही करती आवेदन ।।

महाराज श्री महायज्ञ में हैं दीक्षित ।
वाम अंक में नव बामा होगी वीक्षित ।।

होती होगी मुग्ध मुग्धबामा शतगुण ।
बढ़ते होंगे सकल आपके भी सद्‌गुण ।।

यज्ञ काल में आप करेंगे दान तभी ।
अमित रत्न पट वस्त्र और धन धान्य सभी ।।

पूर्णकाम होंगे याचक समुदाय वहाँ ।
मनमें भिक्षा उठी हमारे एक यहाँ ।।

तुच्छ भीख के लिए न होंगे नाथ कृपण ।
दान सिंधु हैं आप और धन दया रतन ।।

मैं हूँ कौन ? जानना इसको नहीं तुम्हें है आवश्यक ।
रहे सदा तुम तपस्वियों के दुख अशान्ति के ही नाशक ।।

बनवासी मुनियों के हित कुछ भी है तुम्हें अदेय नहीं ।
मैं तपस्विनी हूँ तुम मुझको समझ न लेना हेय कहीं ।।
आज तुम्हारे निकट बैठ जो बनी अंक की है भाजन ।
भक्ति भाव से उसे देखते होंगे सब जगती के जन ।।

पूर्व काल में घोर तपस्या उसने की थी कौन ।
कितने समय कहां बैठी थी कौन मंत्र जप मौन ?
इतना ही यदि मुझे बतादें कान्त ! कहीं ?
अन्य किसी भी धन की इच्छा मुझे नहीं ।।

कोटि कोटि हयमेध यज्ञ में होता जितना दान ।
उससे भी अत्यधिक इसे में मानूँगी भगवान ।।

केवल एक अन्य वार्ता का तुमसे है अनुरोध ।
इस दुखिया के यमज तनय भी हैं अत्यन्त अबोध ।।

पितृ क्रोड़ मैं बैठ न पाए उनका यही अभाग ।
जन्म काल मे नहीं जान पाए स्व-तात अनुराग ॥

जननी के जीवन में क्रन्दन उपजाना ।
आता है वीणा में रामायण गाना ।।

कौन नहीं रो उठा ? लिए मानवी हृदय ।
हो जाते तरु लता गुल्म भी जहाँ अथय ॥

चरित तुम्हारे सुनकर सदा हुए मोहित ।
जाते हैं शिशु उभय आज मुनिराज सहित ।।

करने को आपके चरण--पंकज—दर्शन ।
आकर्षित कर ले जाते है उनका मन ।।

तुम्हें सुनाएँगे दुख की प्राचीन कथा ।
जिसे श्रवण कर दुखिया उर होती व्यथा ।।

नहीं सुनू तो भी उसके प्रति कोमल मन ।
नहीं कर सकूं मैं मनका औत्सुक्य दमन ।।

धीर श्रेष्ठ ! जब आप उसे सुन पाएँगे ।
दीना वैदेही की स्मृति जो लाएँगे ।।

स्वप्न मान मैथिली प्रणय को हे नर वर ।
पुलकित वदना नई प्रणयिनी को लख कर ।।

लिखती जाती पत्र जानकी हृदय बिकल ।
जिसे धो रहा निकल निकल नयनों का जल ।।

लिखूँ और क्या ? सोच रही अपने मन में ।
लव-कुश मुदमय विहँग आ गए उन क्षण में ॥

बोले जननी धन्य धन्य वे अवध पती ।
धन्य प्रणयिनी उनकी सीता भाग्य वती ॥

अश्वमेघ करते हैं कौशल्या नन्दन ।
दूत एक ले करके आया आमंत्रण ॥
उससे ही सब पूछ हुए हम भी अवगत ।
राम चन्द्र के हेतु आज यह धन्य जगत ॥
रघुकुल मणि ने खण्डित जन अपवाद किया ।
प्राण प्रणयिनी सीता को भी त्याग दिया ॥

जब अश्वमेघ में सहधर्मिणि का पड़ा काम ।
तब स्वर्णमयी सीता समुपस्थित भाग वाम ।
जननी ! क्या उनके हित दयिताएँ थी दुर्लभ ।
इच्छित न अन्य जाया थी वे सीता-वल्लभ ॥
कहाँ गई सीता क्या बीता जीवन में ।
जान न पाए यह कुछ भी रामायन में ॥
जाएँगे देखने राम-पद-पद्म सुघर ।
ले चलने को साथ कह रहे थे मुनिवर ॥

सुकुमारों की वाणी सुधा सिंधु लहरी ।
मज्जित कर सीता जीवन कौ फिर छहरी ॥

ऊष्ण रजत से हुआ हृदा उतप्त महा ।
राम सनेह-जलद-जल में था डूब रहा ॥

मन में कहती थी मैं हूँ चिर पाप मयी ।
लिखने बैठी भाषा प्रभु-उर ताप मयी ॥
मैं तो हूँ अबला अति ही दुर्बल हृदया ।
मेरे प्रभु की किन्तु अगाध असीम दया ॥

क्षमा करो अपराध नाथ हे क्षमा सिंधु ।
विधिबश मैं बनीं तुम्हारे उर की गरल विन्दु ।

पत्र छिपा कर बोली प्रकटित हर्ष नवल ।
जाओ वत्स देखने नरपति चरण-कमल ।।
मुनि कहते थे वहाँ सुनाना मधुर गान ।
जो है स्वभाव से सत्य सुधा के ही समान ।।
पुण्यद होकर उस यज्ञ क्षेत्र में सुधा स्रोत
कर देगा घुस प्रत्येक हृदय को ओत प्रोत ।।
जब तुम्हें बुलाएँ राघव जाकर सन्निधान ।
प्रणिपात भक्ति से करना पद वन्दन विधान ।।
देखोगे तुम फिर वहां उन्हों के अग्रज त्रय ।
करना प्रणाम उनके चरणों में अति सविनय ।।
वहीं राजमाता के पावन चरण कमल ।
रज को शीश लगा कर, करना भाग्य सकल ।।
वैदेही की बहनों के पाकर दर्शन ।
सविश्वास सीता सम करना पद-पर्सन ।।
पूछें जब कोई भी हो तुम किसके नन्दन ।
उत्तर देना "हम हैं उभय तापसी धन" ।।
हुए प्रफुल्लित सुनकर के प्रिय मातृ वचन ।
भर आया नव कौतूहल से उनका मन ।।
भोजन और शयन के प्रति थे वे अनमन ।
राम प्रशंसा में करता था उर नर्तन ।।
राम कथा में लीन परस्पर मोद में ।
चले गये दोनो निद्रा की गोद में ।।
स्वामिभक्ति-सरि-श्रोत जानकी का जीवन ।
कर बैठा मानव-उर सीमा का लंघन ।।

× × × × ×

बारह वर्षों से शय्या दृग जल से प्लावित करके ।
मेरे अंक समाती धीरे एक बार आ करके ।।
कितना भी मैं मधुर भाव में करूँ आज आहवान ।
सुनती नहीं कर रही सुरपुर-राज्य-ओर प्रस्थान ।।

नयनों की प्रतिमा है उसके यमज कुँवर।
हो जाएँगे क्षण में नयनों से अन्तर ।।

दशों दिशाएँ उसके हित होंगी तम-मय।
हो न सकेगा जीवन हित में सुख-सूर्योदय ।।

पतिप्राण हो कर उनके पाया क्या फल ?
देख सके दुखिया, कर दे भविष्य उज्ज्वल ।।

प्राण आलबालों में दृग जल दान दिया।
अबला ने पति भक्ती का उद्यान किया ।।

वहाँ न फूले फूल नहीं फल पाए फल।
कहो न जीवन कैसे हो फिर घोर विकल ?

सुमा योग माया ने, बोली चल सजनी।
शेष तभी हो आई थी शीतल रजनी ।।

अभी शीघ्र दोनों चल करके सती निकट।
कर देंगी उसके भविष्य का रहस प्रकट ।।

निद्रा साथ योगमाया आई सत्वर।
घुसीं उभय सीता की कुटिया के भीतर।

स्वर्ग ज्योति से हुआ तभी कानन उज्ज्वल।
दिव्य सुरभि से पूर्ण हो गया पृथ्वीतल ।।

सौरभ से सीता के प्राण हुए पुलकित।
प्रभा पुंज से झँपे नैन होकर विचलित ।।

दृष्ट हुई जानकी-प्रभा से ज्योति मयी।
उसकी आभा निकल मही पर फैल गई ।।

आलोकित श्री राम रत्नमय सिंहासन।
सीता सहित विराजित थे पुलकित आनन ।।

राघव की गोदी में कुश सीता के लव।
छत्र लिए थे खड़े पास उर्मिला विभव ।।

धवल चन्द्रिका सुचारु चामर-चालन।
भरत निरत हो करते थे स्वधर्म पालन ।।

विरचित मोर पंख जाली-से सुभग व्यजन।
झलते थे निज कर में लेकर रिपुसूदन॥
सबकी जीवन ज्योति भविष्योन्मुख हो कर।
स्रोतास्विनी रूप में बहती धार प्रखर॥
कोटि कोटि नर-नारी उसको तीर्थ मान।
पावन सरिता में स्रोत बीच करते स्नान॥
काल सिंधु की ओर जा रही दूर धार।
जो यथा समय अपना स्वरूप करती प्रसार॥
फिर नभ मंडल में देववृन्द विद्याधर गण।
मिलकर करते सुमनोहर सुमनों का वर्षण॥
अमर असुर नर नाग अप्सरा आदि सभी।
भरने लगे नाद "जय सीता-राम" तभी॥
धरा धाम में ग्राम ग्राम में नगर नगर।
नदी नाव सागर जहाज कन्दरा डगर॥
दिवस तथा दिवसावसान निशि प्रात समय।
सुखी दुखी धन हीन तथा धनवान हृदय॥
सबसे उच्चारित होता 'जय सिया—राम"।
हो गई देख कर मुग्ध जिसे ललना ललाम॥

समाप्त